© भारत का विधि आयोग

अठासीवीं रिपोर्ट

साक्ष्य में सरकार का विशेषाधिकार भारतीय
[साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 123-124] और 162 तथा
संविधान के अनुच्छेद 74 और 163

जनवरी, 1983

मूल्य : (देश में) रु० 57.00 पैसे (विदेश में) पौं० 6.65 डा० 20.52

न्यायमूर्ति के० के० मैथ्यू,

अ०स०प०सं० एफ० 2(4)/82-वि०आ०
अध्यक्ष
विधि आयोग
भारत सरकार

10 जनवरी, 1983

प्रिय मंत्री महोदय,

मैं इसके साथ विधि आयोग की 88वीं रिपोर्ट जो न्यायालय के समक्ष कतिपय दस्तावेजों को पेश करने और कतिपय संसूचनाओं को प्रकट करने के लिए सरकार के विशेषाधिकार से संबंधिक है, भेज रहा हूँ।

2. सरकार के अनुरोध पर इस विषय पर विचार किया गया। यह विषय अभी हाल ही के उच्चतम न्यायालय के निर्णय, जो "न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के मामले" के नाम से प्रसिद्ध है, की विवक्षाओं पर भारत के विद्वान महान्यायवादी से प्राप्त संसूचना के कारण विचार करने के लिए आया था।

3. आयोग श्री पी० एम० बख्शी, आयोग के अंशकालिक सदस्य के प्रति, रिपोर्ट तैयार करने के लिए आभारी है। हम श्री वी० वी० वजे, पूर्व सदस्य-सचिव को उनकी सहायता के लिए धन्यवाद देते हैं।

सादर,

आपका

(के० के० मैथ्यू)

श्री जगन नाथ कौशल,
विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-1।

विषय-वस्तु

	पृष्ठ
अध्याय 1—प्रारम्भिक	1
अध्याय 2—भारत में वर्तमान विधि	5
अध्याय 3—विशेषाधिकार की साधारण व्याप्ति : राज्य के कार्यकलाप।	9
अध्याय 4—वह प्राधिकारी जो विशेषाधिकार का दावा कर सकता है।	11
अध्याय 5—वह प्राधिकारी जो विशेषाधिकार के प्रश्न को विनिश्चित करता है।	12
अध्याय 6—विशेषाधिकार का दावा करने और उसे विनिश्चित करने के लिये सामग्री।	13
अध्याय 7—दावा किए गए विशेषाधिकार के अवधारण के लिए तंत्र।	15
अध्याय 8—प्रक्रिया संबंधी संहिताएं	19
अध्याय 9—संवैधानिक उपबंध	21
अध्याय 10—तुलनात्मक संक्षिप्त सर्वेक्षण	23
अध्याय 11—सिफारिशें	32

अध्याय 1

प्रारम्भिक

विषय ।

1.1. यह रिपोर्ट लोक विधि और प्रक्रिया संबंधी विधि के सीमान्तर्गत आने वाले एक महत्वपूर्ण विषय—राज्य के विशेषाधिकार का प्रश्न-से संबंधित है। पहले यह विषय "क्राउन के विशेषाधिकार" के नाम से जाना जाता था किन्तु वर्तमान में उसकी विवेचना "लोकहित विशेषाधिकार" या "कार्यपालिक विशेषाधिकार" शीर्ष के अन्तर्गत की जाती है । इस शीर्ष के अधीन साधारणतः विशेषाधिकार के दावों के संवैधानिक आयाम हैं और, उस कारण यह कहा जा सकता है कि वह लोक विधि से संबंधित है । साथ ही, ऐसे विशेषाधिकार का दावा न्यायालयों में किया जाता है और, यदि वह सफल हो जाता है तो वह कतिपय प्रकार की सामग्री को साक्ष्य में प्रभावी रूप से ग्रहण किए जाने को अपवर्जित करता है और इस प्रकार वह प्रक्रिया संबंधी क्षेत्र में प्रवृत्त होता है । विशेषाधिकार के इस द्वैध स्वरूप के कारण, इस विषय का विवेचन संवैधानिक विधि और प्रक्रिया संबंधी विधि दोनों से ही निकट से संबंधित है।

निर्देश ।

1.2. विधि आयोग द्वारा यह विषय भारत सरकार के अनुरोध पर विचारार्थ लिया गया है । भारत सरकार से भारत के महाधिवक्ता द्वारा यह अनुरोध किया गया था[1] कि वे उच्चतम न्यायालय के हाल ही के निर्णय[2] की विवक्षाओं पर और विशेषाधिकार से संबंधित कतिपय उन विषयों को, जो पूर्वोक्त निर्णय से उद्भूत होते हैं, परिभाषित करने की आवश्यकता पर विचार करें ।

लोक विधि का प्रक्रियात्मक पहलू ।

1.3. लोक विधि अपने प्रक्रियात्मक पहलू की दृष्टि से उतना ही रोचक है जितनी कि उसकी मूल विधि । यद्यपि, नागरिक लोक निकायों और सरकार पर वाद चला सकता है किन्तु उसका आवश्यक रूप से यह अभिप्राय नहीं है कि ऐसे वादों को न्यायालयों द्वारा लागू की जाने वाली विधि और प्रक्रिया वही होगी जो कि प्राइवेट मुकदमों में लागू की जाती है । राज्य को प्रक्रिया संबंधी विशेष सुविधाएं और संरक्षण प्राप्त हैं। ऐसे संरक्षणों में से एक साक्ष्य के क्षेत्र में प्राप्त होता है, और वह कतिपय दस्तावेजों को पेश करने और कतिपय संसूचनाओं को प्रकट करने संबंधी विशेषाधिकार के स्वरूप का है ।

विशेषाधिकार ।

1.4. साक्ष्य विधि में प्रयुक्त पद "विशेषाधिकार" से अभिप्रेत है साक्ष्य देने या सामग्री प्रकट करने की बाध्यता से स्वतंत्रता, या मुकदमे के दौरान या मुकदमे के सम्बन्ध में अन्य स्रोतों से जानकारी को रोकने या वर्जित करने का अधिकार, किन्तु ऐसे आधारों पर जो मुकदमे के उद्देश्यों से संबंधित न हों।[3]

साक्ष्य विधि में ऐसी अनेक स्थितियां हैं जिनमें मुकदमे का पक्षकार (या कोई अन्य व्यक्ति) विशेषाधिकार का दावा कर सकता है और तद्द्वारा न्यायालय में किसी विशिष्ट विषय के बारे में कोई दस्तावेज पेश करने या मौखिक साक्ष्य देने का प्रतिरोध कर सकता है।

राज्य ।

1.5. इन विशेषाधिकारों में से अधिकांश का प्रयोग प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा किया जाता है । उदाहरणस्वरूप यह बताया जा सकता है कि विधि, व्यक्ति को अपने स्वयं को न फंसाने का संवैधानिक विशेषाधिकार प्रदत्त करती है, वह अटर्नी और मुवक्किल के बीच, पति और पत्नी के बीच तथा विशेष प्राइवेट नातेदारी के कुछ अन्य व्यक्तियों के बीच की गोपनीय संसूचनाओं को विशेषाधिकृत स्थिति प्रदान करती है । किन्तु यहां हमारा संबंध उस

1. विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्री को भेजा गया महाधिवक्ता का पत्र तारीख 1 फरवरी, 1982।
2. एस० पी० गुप्ता बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 1498।
3. पाल एफ राथ्सठेन, एवीडेन्स, स्टेट एण्ड फेडरल रूल्स (1981) पृ० 407।

स्थिति से है जिसमें किसी दस्तावेज या किसी साक्ष्य को इस आधार पर कि उसका प्रकटन लोकहित के प्रतिकूल होगा, विधारित करने का दावा राज्य द्वारा किया जाता है । इस विशेषाधिकार की विवेचना साक्ष्य अधिनियम की धारा 123 में की गई है, जो विभाग के प्रमुख आफिसर की अनुज्ञा के सिवाय, राज्य के कार्यकलापों से संबंधित अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों से व्युत्पन्न साक्ष्य देने का प्रतिषेध करती है ।[1]

धारा 123 और पूर्ववर्ती धाराएं ।

1.6. प्रसंगतः यह बताया जा सकता है कि एवीडेन्स ऐक्ट (1855 का सं० 2) की धारा 22 निम्नानुसार थी :—

"22. किसी साक्षी को राज्य के कार्यकलापों से संबंधित कोई ऐसा दस्तावेज पेश करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिसका कि पेश किया जाना सुनीति के प्रतिकूल हो ।"

राज्य के दायित्व ।

1.7. लोक विधि के दृष्टिकोण से, इस विषय पर 'प्रक्रियात्मक क्षेत्र में राज्य का दायित्व' संबंधी विषय के रूप में विचार किया जा सकता है । यद्यपि यह उपबंध साक्ष्य अधिनियम में अन्तर्विष्ट हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि प्रशासनिक विधि में उसके प्रभाव महत्वपूर्ण हैं । हम इस पहलू की ओर इसलिए ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं कि जिससे इस विषय को उचित परिप्रेक्ष्य में देखा जा सके।

इतिहास और विवरण ।

1.8. इंग्लैण्ड में, क्राउन के विशेषाधिकार का विवेचन सामान्यतः राज्य के दायित्व की साधारण विधि के पहलू के रूप में किया गया है । इस संबंध में यह बताया जा सकता है कि क्राउन प्रोसीडिंग ऐक्ट, 1947 जबकि क्राउन को कई प्रकरणों में प्राइवेट नागरिक के रूप में दायित्वाधीन बनाता है, उसमें यह उपबंध करने की सावधानी बरती गई है कि उसके उपबंध इस साधारण विधि को प्रभावित न करें ।

कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित एक लेख में क्राउन के विशेषाधिकार की विवेचना इस प्रकार की गई थी [2]—"प्रजा और प्रजा के बीच के किसी वाद में दस्तावेजों के पेश किए जाने (चाहे पेश किए जाने की अपेक्षा पक्षकार से की गई हो या किसी अन्य व्यक्ति से) के संबंध में क्राउन के विशेषाधिकार का स्रोत राज्य की गुप्त बातों के प्रकटन को रोकने के विशेषाधिकार में खोजा जा सकता है । जैसा कि **पोलक और मेटलैण्ड** की हिस्टरी आफ इंग्लिश ला (द्वितीय संस्करण) (खण्ड 1, पृ० 517) में बताया गया है," राजा को यह शक्ति है कि वह उन व्यक्तियों को, जो उसके नाम से अवैध कार्य करते हैं, संरक्षण दे, और वह उन मामलों को, जिनसे उसका कोई भी संबंध है, न्याय के साधारण अनुक्रम से वापिस ले सकता है । यदि राजा 'क' का स्वत्वापहरण कर लेता है और भूमि 'ख' को अन्तरित कर देता है तो 'ख', जब उसके विरुद्ध वाद लाया जाता है, यह कहेगा कि वह राजा के बिना कोई उत्तर नहीं दे सकता, और कार्रवाई तब तक के लिए रोक दी जाएगी जब तक कि राजा यह आदेश नहीं दे देता कि वह आगे चलाई जाए । हम यह पाते हैं कि दस्तावेजों के प्रकटीकरण के संबंध में ऐसे ही सिद्धान्त सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में भी लागू थे ।

"किन्तु लोकतंत्रात्मक सरकार के उद्‌भव के साथ, इन मामलों में क्राउन का हित लोकहित के रूप में विकसित हुआ और लोकहित के समरूप हो गया ।"

"......उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में—जब 'लोक नीति' के सिद्धान्तों का व्यापक और उदार निर्वचन किया गया—हम यह पाते हैं कि दस्तावेजों से संबंधित विशेषाधिकार को लोकहित के आधार पर मान्यता दी गई । उस समय लोक नीति और लोकहित सभी आशयों के लिए समानार्थी थे ।"

---

1. ग्राहम सी० लीली, एन इन्ट्रोडक्शन टु दी ला आफ एवीडेन्स (1978), पृ० 317 ।
2. "डाकुमेन्ट्स प्रिविलेज्ड इन पब्लिक इन्टरेस्ट" 39 ला क्वाटरली रिव्यू—476-477 ।

लेयर्स[1] से संबंधित मामले में, महाधिवक्ता ने यह दावा किया कि लार्ड्स आफ काउन्सिल का कार्यवृत्त पेश नहीं किया जाना चाहिए, और सर जान प्रैट, एल० सी० जे० ने इस दावे का समर्थन यह कहते हुए किया कि "इन चीजों को प्रकट कराने का अर्थ होगा राजा को क्षति पहुंचाना।"।

कार्यपालिक विशेषाधिकार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका।

1.9. संयुक्त राष्ट्र में, तत्समय विशेषाधिकार को, जो 'कार्यपालिक विशेषाधिकार' के नाम से जाना जाता है, निश्चित रूप से सर्वसत्ताधारी की उन्मुक्ति के रूप' में माना जाता है। वास्तव में, क्राउन के विशेषाधिकार का यह अमेरिकी संस्करण कभी भी ब्रिटेन के सिद्धान्त के समतुल्य नहीं रहा, किन्तु हम इस समय इस विषय के उस पहलू पर विचार करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते।

आंग्ल विधि लोक हित की हानि।

1.10. इंग्लैण्ड में अब जो सामान्य सिद्धान्त बनाया गया है वह यह है कि सुसंगत साक्ष्य को अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए, यदि वह लोक हित के प्रतिकूल हो। यही वह सामान्य सिद्धान्त है जो शासकीय कार्यकलापों के संचालन में संसूचनाओं के प्रकटीकरण या अप्रकटीकरण को विनियमित करता है।

शासकीय संसूचनाओं के लिए उस नियम के अलावा कोई पृथक् नियम नहीं है जो शासकीय दस्तावेजों को लागू होता है। विशिष्टतः, क्राउन इस बात के लिए अनुज्ञात नहीं है कि वह किसी साक्षी द्वारा, भले ही वह सिविल सर्वेण्ट क्यों न हो, कोई मौखिक साक्ष्य दिए जाने पर आक्षेप करे। साक्षी को हाजिर होना ही चाहिए, और आक्षेप उस प्रश्न तक ही सीमित होना चाहिए जिसके बारे में यह दावा किया जाता है कि वह लोक नीति[2] के सिद्धान्त के अन्तर्गत है, भले ही उस सिद्धान्त की व्याप्ति कुछ भी हो।

ब्रूम का मामला[3] इसका दृष्टान्त है। इस मामले में पत्नी ने पति के विरुद्ध विवाह के विघटन का वाद क्रूरता के आधार पर चलाया था जिसमें अन्य बातों के साथ यह अभिकथित किया गया था कि जब वह हांगकांग में (जहां कि पति सेना में सार्जेण्ट की हैसियत से पदस्थ था) पति से मिली तब पति उसे अपने साधनों से बहुत निचले स्तर के एक गन्दे प्रकोष्ठ में ले गया और उसने उसे कोई सहायता नहीं दी और उसे धनाभाव में रखा। अपने अभिकथन को साबित करने के लिए, पत्नी ने (मौखिक साक्ष्य देने पर कुछ दस्तावेज पेश करने के लिए) सपीना की तामील श्रीमती आलसोप पर करवाई जो कि तात्विक समय पर हांगकांग में सोलजर्स फेमिलीज एसोसिएशन की एकमात्र प्रतिनिधि थी। सेक्रेटरी आफ स्टेट फार वार ने, प्रमाणपत्र द्वारा, यह राय अभिलिखित की कि यह लोक हित में नहीं था कि "दस्तावेज पेश किए जाएं या श्रीमती आलसोप का साक्ष्य मौखिक रूप से दिया जाए। इस प्रक्रम पर हमारा संबंध उक्त प्रमाणपत्र के पश्चात्कथित भाग से है जो मौखिक साक्ष्य से संबंधित है। न्या० सैक्स ने यह ठहराया कि मिनिस्टर के लिए ऐसी प्रक्रिया अपनाना गलत था जो साक्षी को किसी भी प्रकार का कोई साक्ष्य देने से निवारित करती हो। प्रमाणपत्र का प्रारूप ऐसा नहीं था जो न्यायालय को यह अभिनिश्चित करने के लिए समर्थ बनाता हो कि वस्तुतः उस साक्ष्य का स्वरूप क्या था जिसके लिए विशेषाधिकार का दावा किया जा रहा था। गुणागुण के आधार पर भी, वे इस बात से आश्वस्त नहीं थे कि मामले की परिस्थितियों में, विशेषाधिकार का दावा करने के लिए कोई विधिसम्मत औचित्य था। जिस ढंग से पत्नी की हांगकांग के घाट पर अगवानी की गई तथा उपलब्ध स्थान और संबद्ध बातों के बारे में श्रीमती आलसोप का साक्ष्य सुसंगत और न्यायालय के लिए सहायक था और उन बातों के बारे में ऐसा कोई स्पष्ट कारण नहीं था जिसके आधार पर क्राउन के विशेषाधिकार के नाम पर कोई हस्तक्षेप किया जाए।

इंग्लैंड में कोई विशेषाधिकार नहीं है।

1.11. जहां तक इस विषय से संबंधित निर्णयज विधि से ज्ञात होता है, इंग्लैंड में कम से कम आधुनिक विचारधारा के अनुसार लोक सेवकों को दी गई गोपनीय संसूचनाओं

1. लेयर्स केस, (1722) 16 How. St. Tr. पृ० 224।

2. ब्रूम वि० ब्रूम (1955) आल० ई० आर० 201, 204 समीक्षा के लिए देखिए (1957) केम्ब्रिज लॉ जरनल दो।

3. ब्रूम वि० ब्रूम (1955) आल० ई० आर० 201।

के लिए कोई पृथक् विशेषाधिकार नहीं है । 'लोक हित को हानि का सिद्धांत' लागू होता है, और यह परिलक्षित होता है कि जो भी नियम लिखित अभिलेखों को लागू होता है वही नियम मौखिक संसूचनाओं को लागू होता है । तथापि, यह कहा जाता[1] है कि मौखिक साक्ष्य के लिए जिस प्रक्रिया का समुचित रूप से अनुसरण किया जा सकता है उसे अभिनिश्चित करना होता है ।

लार्ड साइमन ने **रोजर्स वि० सेक्रेटरी आफ स्टेट**[2] में अपने विचार निम्नानुसार व्यक्त किए :—

> मैं स्वयं इस बात से आश्वस्त नहीं हूं कि गोपनीयतापूर्वक दी गई किसी संसूचना को प्रकट न करने के लिए कोई सामान्य विशेषाधिकार है ।
>
> (देखिए **स्मिथ वि० ईस्ट इण्डिया कम्पनी**[3] किन्तु **अलफ्रेड क्राम्पटन एम्यूजमेण्ट मशीन्स लिमिटेड वि० कमि० आफ कस्टम्स एण्ड एक्साइज**[4] से तुलना कीजिए ।

उन परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए जिनसे कि विधि स्वयं गोपनीयता का अनुमान कर सकती है, लार्ड साइमन ने यह व्यक्त किया कि—

> किन्तु यदि वर्गीकरण यह है तो उससे प्रकट होगा कि विशेषाधिकार (वास्तविक विशेषाधिकार अधित्यज्य होता है) सूचना देने वाले का होता है न कि पाने वाले का ।

जबकि लार्ड साइमन कोई निश्चयात्मक कथन करने के बारे में पर्याप्त रूप से सावधान थे, साक्ष्य विषयक कुछ आधुनिक कृतियों[5–6] में इस विषय का जो विवेचन किया गया है, उससे प्रतीत होता है कि शासकीय प्रयोजनों के लिए दी गई संसूचनाओं से संबंधित मामलों पर पृथक से विचार नहीं किया जाता, वरन् उसे लोक हित के सामान्य प्रवर्ग में शामिल किया जाता है ।

भारत में, साक्ष्य अधिनियम की धारा 123 में समाविष्ट विशेषाधिकार कदाचित नीति संबंधी विनिश्चय समाविष्ट करने के लिए आशयित था । तथापि, यह अधिक स्पष्ट नहीं है कि साक्ष्य अधिनियम के निर्माताओं ने आंग्ल विधि का विस्तृत परीक्षण किया था । इस अधिनियम से संबंधित उपलब्ध अभिलेख इस विषय पर प्रकाश नहीं डालते ।

विशेषाधिकार का महत्व ।

1.12. वास्तव में, ऐसे विशेषाधिकारों से केवल मात्र प्राविधिक विवाद्यकों से भिन्न अनेक महत्वपूर्ण विवाद्यक उद्भूत होते हैं । विशेषाधिकार प्राप्त संसूचनाओं को एक विशिष्ट कारण से संरक्षण प्राप्त है । साक्ष्य विधि सामान्यतः विश्वसनीय समझा जाने वाला सुसंगत साक्ष्य प्राप्त करके और अपर्याप्त रूप से प्रमाणक या विश्वसनीय साक्ष्य को अग्राह्य करके तथ्यान्वेषण में शुद्धता सुनिश्चित करने के लिए उद्दिष्ट है ।[7] किन्तु विशेषाधिकार प्राप्त संसूचनाओं को, जो (साक्ष्य संबंधी सामान्य मानकों के अनुसार) अत्यधिक प्रमाणकारी और विश्वसनीय हो सकती हैं, इसलिए अपवर्जित की जाती हैं कि उनका प्रकटीकरण उस सिद्धांत या संबंध के, (जिसकी प्रकृति प्रमुखतः साक्षिक नहीं होती) जिसको कि समाज परिरक्षित और पोषित किए जाने योग्य मानता है, प्रतिकूल होता है । बहुधा, यह साक्ष्य, जो इन स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है, यदि उसे प्रमाणकारी मूल्य और विश्वसनीयता के सामान्य मानकों के दृष्टिकोण से देखा जाए, ग्राह्य होगा । तथापि, नीति विषयक कारणों से उसे अपवर्जित कर दिया जाता है ।

1. **ब्रूम** बनाम **ब्रूम** (1955) प्रोबेट 190, 198 (1955) 1 आल० ई० आर० 201 (सेक्स, न्या०) ।
2. **रोजर्स** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट** (1972) । 2 आल० ई० आर० 1057, 1067 (एच० एल०) ।
3. **स्मिथ** बनाम **ईस्ट इंडिया कंपनी** (1841) 1 एफ० पृ० 54 ।
4. **अल्फ्रेड क्राम्पटन एम्यूजमेंट मशीन्स लि०** बनाम **कमि० आफ कस्टम्स एण्ड एक्साइज**, (1972) 2 आल० ई० आर० 353, 380, (1972) 2 डब्ल्यू० आई० आर० 835, 859 ।
5. क्रास, आन एवीडेन्स (1979), अध्याय 12, धारा 1, पृ० 305–317 ।
6. फिपसन, मेन्युअल आफ एवीडेन्स (1972) पृ० 94 ।
7. **ग्राहम सी० लिली** एन इन्ट्राडक्शन टु दी ला आफ एवीडेन्स (1978) पृ० 317 ।

1.13. साक्षिक विशेषाधिकार का मूल्य स्पष्ट है, और उसका वहन अनिच्छापूर्वक नहीं किया जाना चाहिए। प्रथमतः, विशेषाधिकार प्रदत्त किए जाने का परिणाम यह होता है कि प्रमाणकारी साक्ष्य दब जाता है और विचारण करने वाले व्यक्ति को साक्ष्य की सुविधा के बिना वास्तविक विवाद्यकों को विनिश्चित करना पड़ता है। इस अर्थ में, साक्षिक विशेषाधिकार इस अधिसंभाव्यता को बढ़ा देता है कि न्यायिक विवाद्यकों का विनिश्चय गलत तरीके से होगा। अतः संक्षेप में, प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या यह विशेषाधिकार अपने मूल्य के योग्य है। विशेषाधिकार का प्रदत्त किया जाना इस धारणा पर आधारित है कि उसकी मान्यता उस हित, संबंध या सिद्धांत को आगे बढ़ाता है जिसे समाज प्रवर्तमान मूल्य मानता है। अतः यह आवश्यक है कि संतुलन स्थापित किया जाए।

परस्पर विरोधी विचारों का संतुलन।

1.14. यह ध्यान देने योग्य बात है कि विशेषाधिकार द्वारा प्रदत्त गोपनीयता के आवरण का विस्तार बहुधा एक ओर कानूनी भाषा और न्यायिक व्याख्या का और लोक नीति की कुछ शाखाओं के बीच के तनाव का तथा दूसरी ओर जनता और न्यायालय को जानकारी देने की आवश्यकता का सम्मिश्रण है।

विवेचना की योजना।

1.15. इन सामान्य विचारों को व्यक्त करने के पश्चात्, हम इस रिपोर्ट में अपनाई गई विवेचन की योजना बताना चाहेंगे। विवेचनाधीन विशेषाधिकार का युक्तियुक्त विवरण और उसकी व्याप्ति के संबंध में पहले विचार किया जाएगा। जो प्राधिकारी विशेषाधिकार का दावा कर सकते हैं तथा जो प्राधिकारी दावे का विनिश्चय कर सकते हैं--पश्चात्कथित का महत्व अपेक्षाकृत रूप से बहुत अधिक है--उन पर बाद में विचार किया जाएगा। जिस सामग्री के आधार पर विशेषाधिकार का दावा किया जा सकता है तथा उस दावे के न्याय निर्णयन के लिए तंत्र तथा प्रक्रिया पर हम बाद में विचार करेंगे। साक्ष्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त, गोपनीयता से संबंधित कुछ सांविधानिक उपबंधों की चर्चा करना भी आवश्यक होगा। अन्य देशों की स्थिति का भी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाएगा। इस रिपोर्ट का समापन इस विधि के सुधार से संबंधित सिफारिशों के साथ किया जाएगा।

पूर्ववर्ती रिपोर्ट।

1.16. इस प्रक्रम पर, इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 पर विधि आयोग की विस्तृत रिपोर्ट है[1]। यह रिपोर्ट मई, 1977 में सरकार को भेजी गई थी[2]। इस रिपोर्ट में, सम्पूर्ण साक्ष्य अधिनियम पर, इस रिपोर्ट से सुसंगत धाराओं को सम्मिलित करते हुए, व्यापक रूप से विचार किया गया है। इस रिपोर्ट में दी गई सामग्री से हमें न केवल बहुत सहायता मिली है वरन् हमें यह कहने में प्रसन्नता है कि हम उस रिपोर्ट में प्रतिपादित दृष्टिकोण से सारतः सहमत हैं।

अध्याय 2

भारत में वर्तमान विधि

वर्तमान रिपोर्ट की व्याप्ति और विधि आयोग की पूर्ववर्ती रिपोर्ट।

2.1. राज्य के विशेषाधिकार का विषय--जहां तक कि वह साक्ष्य के पेश किए जाने से संबंधित है--मुख्यतः भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 123, 124 और 162 में अन्तर्विष्ट है। पहली दो धाराओं का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि वे एक दूसरे को आच्छादित करती हैं। अंतिम वर्णित धारा (धारा 162) राज्य के विशेषाधिकार तक ही सीमित नहीं है वरन् उसका संबंध विशेषाधिकार के समस्त प्रश्नों के अवधारण की प्रक्रिया से है, चाहे विशेषाधिकार का दावा 'राज्य का विशेषाधिकार' शीर्षक के अधीन किया गया हो या किसी अन्य शीर्ष के अधीन।

---

1. भारत का विधि आयोग, 69वीं रिपोर्ट (भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872) (मई, 1977)।
2. हममें से एक उस रिपोर्ट में सहयुक्त थे।

मुख्यतः, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की ये तीन धाराएं विचाराधीन विषय से सुसंगत हैं। जैसा कि बताया जा चुका है, वस्तुतः उस सम्पूर्ण अधिनियम के संबंध में विधि आयोग ने विस्तृत और पूर्ण रिपोर्ट दी है[1]। चूंकि संविधान के कुछ उपबंध कतिपय सामग्री की गोपनीयता से संबंधित हैं, अतः उन पर भी विचार किया जाएगा।

2.2. यह उल्लेख किया जा सकता है कि यह रिपोर्ट 'सरकार में गोपनीयता' के सामान्य प्रश्न से संबंधित नहीं है और इसलिए इस रिपोर्ट में जानकारी की स्वतंत्रता, नागरिक का जानने का अधिकार और तत्संबद्ध विषयों की विस्तृत चर्चा करना प्रस्तावित नहीं है। वे विषय—चूंकि वे किसी भी लोकतन्त्रात्मक समाज में महत्वपूर्ण हैं—सरकार और साधारण नागरिक के बीच के संबंधों पर केन्द्रित हैं। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि शासकीय गुप्त बात अधिनियम भी इस रिपोर्ट के परे है। वह अधिनियम शासकीय गोपनीयता के एक भिन्न पहलू—शासकीय गुप्त बातों को संसूचित करना और सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली कुछ ऐसी अन्य बातें करना जिनसे दण्ड विधि के शस्त्र के प्रयोग के माध्यम से दण्डित किए जाने योग्य आचरण गठित होता है—से संबंधित है। (प्रसंगतः, इस अधिनियम के बारे में भी आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी है[2]।) यह रिपोर्ट वास्तव में नीति विषयक तर्कों" (जिन्हें उपयुक्ततः लोक हित कहा जा सकता है) के आधार पर राज्य की ओर से दावा किए जाने वाले साक्षिक विशेषाधिकार की विवेचना करती है।

तुलनात्मक विकास।

2.3. मुकदमें में साक्ष्य के बारे में सरकार के विशेषाधिकार ने आधुनिक समय में राष्ट्रकुल के भीतर और बाहर के देशों में अत्यधिक ध्यान आकृष्ट किया है। इस क्षेत्र में द्रुत गति से विकास हुआ है। वास्तव में, कुछ प्रक्रमों पर इतनी द्रुत गति से विकास हुआ है कि उसके साथ चल पाना मुश्किल हो गया है। प्रश्नगत विशेषाधिकार से सुसंगत कुछ विवाद्यकों पर अन्य स्थानों में प्रचलित विधि के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह अभी भी विकासावस्था में है। जबकि यह कहा जा सकता है कि जिस सामान्य दिशा की ओर यह विधि गतिशील हो रही है, वह बहुत कुछ सुस्थापित है, प्रत्याशित रूप से नई स्थितियां उत्पन्न होती जा रही हैं और वे अनेकानेक प्रकार की परिस्थितियों के दृष्टान्त उपस्थित करती हैं जिनके कि संबंध में सफलतापूर्वक या अन्यथा विशेषाधिकार का दावा किया जाने लगा है।

विभिन्न देशों की स्थिति का व्यापक सर्वेक्षण करने का हमारा आशय नहीं है। किन्तु उस सामग्री का उल्लेख किया जाएगा जो उन बिन्दुओं पर प्रकाश डालती है जो अन्यथा स्पष्ट नहीं हो पाते।

भारतीय विधि—धारा 123, 124 साक्ष्य अधिनियम।

2.4. इस विषय पर भारतीय विधि, साक्ष्य अधिनियम की तीन धाराओं से संबंधित है। उस अधिनियम की धारा 123 निम्नानुसार है:—

> "123. कोई भी व्यक्ति राज्य के किन्हीं भी कार्यकलापों से संबंधित अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों से व्युत्पन्न कोई भी साक्ष्य देने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा, सिवाय सम्पृक्त विभाग के प्रमुख आफिसर की अनुज्ञा के जो ऐसी अनुज्ञा देगा या उसे विधारित करेगा, जैसा करना वह ठीक समझे।"[3]

धारा 123 के सिवाय, उन शासकीय बातों से, जिनका प्रकटन लोकहित के लिए हानिकर होगा, सुसंगत एक अन्य धारा भी है। अधिनियम की धारा 124 के अधीन किसी भी लोक अधिकारी को इस बात के लिए विवश नहीं किया जाएगा कि वह शासकीय विश्वास में उसे दी गई संसूचनाओं को प्रकट करे जबकि वह यह समझता हो कि उस प्रकटन से लोक हित की हानि होगी।

---

1. भारत का विधि आयोग, 69वीं रिपोर्ट (भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872) अध्याय 65, 66, 93 (मई, 1977)।
2. भारत का विधि आयोग, 43वीं रिपोर्ट (राष्ट्रीय सुरक्षा के विरुद्ध अपराध)।
3. प्रकटीकरण से संबंधित नियमों के लिए देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 11।

2.5. कुछ हद तक साक्ष्य अधिनियम की धारा 123 और 124 एक दूसरे को आच्छादित करती हैं, किन्तु साथ ही, कुछ बातों के संबंध में वे एक दूसरे से भिन्न हैं। वे एक दूसरे को उस सीमा तक आच्छादित करती हैं जहां तक कि अप्रकाशित शासकीय अभिलेख से व्युत्पन्न वह साक्ष्य, जो किसी लोक अधिकारी को शासकीय विश्वास में दी गई संसूचनाएं हों, दोनों ही धाराओं के अधीन आता है। वे एक दूसरे से भिन्न हैं जहां तक कि अप्रकाशित शासकीय अभिलेख से व्युत्पन्न वह साक्ष्य, जो किसी लोक अधिकारी को शासकीय विश्वास में दी गई संसूचना न हो, केवल धारा 124 के अधीन आता है और वह, धारा 123 के परे है। धारा 123-124 की तुलना।

धारा 123 किसी लोक अधिकारी तक सीमित नहीं है जबकि धारा 124 सीमित है। दूसरी ओर, जहां धारा 123 लिखित अभिलेख तक सीमित है, धारा 124 इस प्रकार सीमित नहीं है। अतः जैसा कि ऊपर बताया गया है, उनके वर्तमान शब्दविन्यास के कारण आच्छादन उत्पन्न हो सकता है। हम अपनी सिफारिशें देते समय[1] इस पहलू पर पुनः चर्चा करेंगे।

2.6. कुछ मामलों में--जैसे मौखिक शासकीय संसूचनाओं के बारे में--धारा 124 का अनुपालन करना पर्याप्त है। ऐसे मामले महत्वपूर्ण समस्याएं उपस्थित नहीं करते। किन्तु इन दो धाराओं के बीच आच्छादन (जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है) उन मामलों में कठिनाई पैदा कर सकता है जहां दोनों धाराएं लागू होती हैं। विशिष्टतः, जबकि धारा 123 के अधीन (जैसी कि वह अब है), अनुज्ञा देने का कार्य विभाग के प्रमुख का है, धारा 124 के अधीन यह लोक अधिकारी को विनिश्चित करना होता है कि क्या प्रकटन से लोक हित को हानि पहुंचेगी। यह आवश्यक होगा कि इस पहलू पर बाद में चर्चा की जाए क्योंकि वह केवल विधि प्रारूपण या पाठीय विश्लेषण संबंधी समस्या न होकर निश्चायक महत्व का विषय है। दो धाराओं के बीच आच्छादन--उसके संभावित परिणाम।

2.7. इसी विषय से संबंधित उपबंध उस अधिनियम की धारा 162 में है, जिसके अधीन कोई दस्तावेज पेश करने के लिए समन किया गया कोई साक्षी, उस दस्तावेज को, यदि वह उसके कब्जे में या शक्त्याधीन है, न्यायालय में लाएगा, भले ही उसके पेश किए जाने या उसे ग्रहण किए जाने के बारे में कोई आक्षेप क्यों न हो। ऐसे किसी आक्षेप की विधिमान्यता, इस धारा के अधीन न्यायालय द्वारा विनिश्चित की जाएगी। वह धारा यह और उपबंधित करती है कि न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, उस दस्तावेज का, यदि वह राज्य की बातों से संबंधित न हो, निरीक्षण कर सकेगा, या स्वयं को उसकी ग्राह्यता अवधारित करने के लिए समर्थ बनाने के लिए, अन्य साक्ष्य ले सकेगा। धारा 162।

(इस धारा का अंतिम पैरा वर्तमान प्रयोजन के लिए तात्विक नहीं है)

धारा 162 वास्तव में उन दस्तावेजों तक सीमित नहीं है जिनके लिए धारा 123 के अधीन विशेषाधिकार का दावा किया जाता है। यह धारा दस्तावेजों के संबंध में **विशेषाधिकार के समस्त दावों** के अवधारण के लिए तन्त्री धारा है।

2.8. साक्ष्य अधिनियम के इन सभी उपबंधों पर, विधि आयोग द्वारा साक्ष्य अधिनियम से संबंधित अपनी रिपोर्ट में विस्तृत विवेचना की गई है। उस रिपोर्ट में की गई सिफारिशें, जहां तक कि वे धारा 123, 124 और 162 से संबंधित हैं, निर्देश की सुविधा के लिए यहां संक्षेप में दी जा रही हैं[2]। साक्ष्य अधिनियम से संबंधित रिपोर्ट में की गई सिफारिशें।

1. देखिए नीचे का अध्याय 11।

2. भारत का विधि आयोग, 69वीं रिपोर्ट (भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872) (अध्याय 65, 66, और 93)।

धारा 123 के बारे में यह सिफारिश की गई थी कि उस धारा को निम्नलिखित रूपरेखा के आधार पर पुनरीक्षित किया जाए:—

(1) किसी को भी इस बात के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा कि वह राज्य के किन्हीं भी कार्यकलापों से संबंधित अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों से व्युत्पन्न कोई साक्ष्य दे जब तक कि संबंधित विभाग के प्रमुख अधिकारी ने ऐसा साक्ष्य देने की अनुज्ञा न दे दी हो।

(यह प्रतिपादना प्रारम्भतः, स्थिति वर्णित करने के लिए आशयित थी। यह मुख्यतः साक्षी और उसके वरिष्ठ के बीच प्रवर्तित होगी)।

(2) ऐसे अधिकारी को ऐसी अनुज्ञा तब तक विधारित नहीं करनी चाहिए जब तक कि उसका यह समाधान न हो जाए कि ऐसा साक्ष्य लोक हित के लिए हानिकर होगा। इस संबंध में उसे शपथपत्र भी देना चाहिए। न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, विभाग के प्रमुख से अतिरिक्त शपथपत्र मांग सकता है।

(यह प्रतिपादना 'लोक हित को हानि' के परीक्षण को, जो इस विषय पर निर्णयज विधि से विवेचनीय है, प्रमुखता देकर और न्यायिकतः उपदर्शित प्रक्रिया को संहिताबद्ध करके, इस धारा का विशदीकरण करने के लिए आशयित थी।)

(3) जहां ऐसे अधिकारी ने ऐसा साक्ष्य देने की अनुज्ञा विधारित कर ली हो, और न्यायालय को, अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों का निरीक्षण करने और शपथपत्र पर विचार करने के पश्चात्, यह राय हो कि ऐसा साक्ष्य देना लोक हित के लिए हानिकर नहीं होगा, वहां न्यायालय को उस प्रभाव का विनिश्चय अभिलिखित करना चाहिए और तदुपरि वह धारा ऐसे साक्ष्य को लागू नहीं होगी।

(यह प्रतिपादना, जहां तक पाठीय विधि का संबंध था, विद्यमान धारा को उपांतरित करने के लिए आशयित थी। यह परिवर्तन महत्वपूर्ण था क्योंकि लोक हित की हानि के बारे में विनिश्चय की शक्ति न्यायालय को होगी न कि विभाग के प्रमुख अधिकारी को।)

2.9. फिर, जहां तक धारा 124 का संबंध है, उसे निम्नानुसार पुनरीक्षित करने की सिफारिश की गई थी—

"124. (1) कोई भी लोक अधिकारी, उसे शासकीय विश्वास में दी हुई संसूचनाओं को, जो राज्य के किन्हीं भी कार्यकलापों से संबंधित अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों में अन्तर्विष्ट संसूचनाओं से भिन्न हों, प्रकट करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा जबकि न्यायालय यह समझता है कि उस प्रकटन से लोक हित की हानि होगी।

(2) जहां किसी लोक अधिकारी से, जो साक्षी है, कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाता है जिससे ऐसी किसी जानकारी का प्रकटन आवश्यक होगा, और वह, उस प्रश्न का उत्तर देने में इस आधार पर आक्षेप करता है कि उसके प्रकटन से लोक हित की हानि होगी, वहां न्यायालय, उसके आक्षेप को नामंजूर करने के पूर्व, उससे उसके आक्षेप की प्रकृति, और उसके लिए कारणों को चेम्बर में अभिनिश्चित करेगा।"।

2.10. साक्ष्य अधिनियम की धारा 162 के द्वितीय पैरा के बारे में आयोग की सिफारिश थी कि शब्द "यदि वह राज्य की बातों से संबंधित न हो" निकाल दिए जाए। इसका उद्देश्य यह था कि किसी भी ऐसी दस्तावेज को, जिसके बारे में यह दावा किया गया है कि वह "राज्य के कार्यकलापों" से संबंधित है और इस कारण विशेषाधिकार प्राप्त है, निरी- क्षण करने की न्यायालय की शक्ति पर किसी भी निर्बन्धन को हटा दिया जाए।

संवैधानिक उपबंध।

2.11. भारतीय विधि का अभी तक का सर्वेक्षण साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों पर केन्द्रित रहा है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 74 और 163 में महत्वपूर्ण

उपबंध हैं जिनका उल्लेख, कुछ आवश्यक संशोधनों पर विचार करने के प्रयोजन से आवश्यक होगा'[1]। ये उपबंध मंत्रिपरिषद द्वारा दी गई सलाह की गोपनीयता को संरक्षित करते हैं।

रिपोर्ट के उत्तरवर्ती अध्याय

2.12. इस रिपोर्ट के उत्तरवर्ती अध्यायों में उपर्युक्त स्थितियों से उद्भूत होने वाले अनेक बिन्दुओं—कानूनी तथा सांविधानिक—पर ऊपर उल्लिखित सामग्री के प्रकाश में विचार किया गया है।

अध्याय 3

विशेषाधिकार की साधारण व्याप्ति—राज्य के कार्यकलाप

धारा 123—राज्य के कार्यकलाप

3.1. इस प्रक्रम पर, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 123 द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकार की व्याप्ति का संक्षेप में विवेचन करना सुविधाजनक होगा—जिससे सुस्पष्टतः यह दर्शित होगा कि इस विधि में जो कल्पनाएं हैं उन्हें व्यवहार में कैसे लागू किया गया है। इस धारा में आने वाली अभिव्यक्ति 'राज्य के कार्यकलाप' भारत में प्रवृत्त किसी अन्य विधान में प्रयोग में नहीं लाई गई है। किन्तु यह अभिव्यक्ति पाठ्य पुस्तकों और शास्त्रीय साहित्य में बहुधा प्रयुक्त होती है। इस अभिव्यक्ति के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य राज्य से संबंधित बातों और प्राइवेट हित की बातों के बीच के अन्तर को स्पष्ट करना[2] है। वास्तव में, यह विशेषाधिकार का एकमात्र तत्व नहीं है, क्योंकि इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि वे बातें, जिनके बारे में विशेषाधिकार का दावा किया जाता है, ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए कि उनका प्रकटन लोक हित के विरुद्ध होगा। वह सिद्धान्त, जिसके आधार पर संरक्षण दिया जाता है, यह है कि जहां लोक और निजी हित में विरोध उत्पन्न होता है, वहां निजी हित को लोक हित के समक्ष नत हो जाना चाहिए।

नेमी दस्तावेज

3.2. राज्य के प्रत्येक अधिकारी की ओर से किसी अन्य अधिकारी को दी गई संसूचना आवश्यक रूप से ऐसी संसूचना नहीं होती जो 'राज्य के कार्यकलापों' से संबंधित हो। उदाहरणार्थ, कस्टम्स प्रिवेन्टिव सर्विस द्वारा रखे गए पोस्टिंग रजिस्टर के बारे में विशेषाधिकार उद्भूत नहीं हो सकता, क्योंकि प्रश्नगत प्रविष्टि मात्र उस समय के बारे में टीप है जबकि विशिष्ट निवारक अधिकारियों को अपने-अपने स्थानों पर रहने का आदेश दिया गया था[3]।

राज्य की सुरक्षा

3.3. अभिव्यक्ति 'राज्य के कार्यकलाप' के अन्तर्गत उन दस्तावेजों का मामला आ सकता है जिनके बारे में गोपनीय रखने की प्रथा राज्य की समुचित सुरक्षा के लिए आवश्यक है। निवारक निरोध अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने की दृष्टि से, किसी व्यक्ति से संबंधित रिपोर्ट 'राज्य के कार्यकलाप' से संबंधित विषय है[4]।

मंत्री मण्डल की सलाह

3.4. अभिव्यक्ति 'राज्य के कार्यकलाप' के अन्तर्गत मंत्री द्वारा दी गई सलाह भी आएगी। इस प्रकार, राजस्थान के एक मामले में,[5] वादी ने, राज्य क्षेत्र में उपयोग में लाई जाने के लिए अपने द्वारा उत्पादित माचिस के स्टाक पर चुकाए गए राजस्व शुल्क के भाग के प्रतिदाय के मद्दे 1,19,000 रुपए की वसूली के लिए राजस्थान राज्य के विरुद्ध वाद चलाया। यह राज्य सरकार के साथ किए गए करार के अनुसरण में था। एक दस्तावेज में चर्चा का कार्यवृत्त समाविष्ट था और उसमें मंत्री द्वारा दी गई सलाह दर्शाई गई थी। राज्य ने इस दस्तावेज के बारे में धारा 123 के अधीन विशेषाधिकार का दावा किया। विशेषाधिकार का दावा विचारण न्यायालय द्वारा तथा उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया। उच्च न्यायालय ने यह ठहराया कि वह दस्तावेज जिसमें चर्चा के कार्यवृत्ति समाविष्ट थे और जो मंत्री द्वारा दी गई सलाह उपदर्शित करता था, निश्चित रूप से धारा 123 के अधीन संरक्षित था, और न्यायालय राज्य को इस बात के लिए विवश नहीं कर सकता था कि वह उसे पेश करे।

---

1. नीचे का अध्याय 9।
2. पंजाब राज्य बनाम सोढ़ी सुखदेव सिंग ए० आई० आर० 1961 उच्चतम न्या० 493, तथा लेडी दिनबाई वि० डोमिनियन आफ इंडिया, ए० आई० आर० 1951, बम्बई, 72।
3. रुकुमली बनाम आर० 22 सी० डब्ल्यू० एन० 1951।
4. चौधरी बनाम चाग्गकाकाटी, ए० आई० आर० 1960, असम 210।
5. कोटच मैच फैक्टरी, कोटा बनाम राजस्थान राज्य, ए० आई० आर० 1970, राज० 119।

आय-कर कागज पत्रों के बारे में दुर्बोधता।

इसके विपरीत, माल के प्रदाय के लिए सरकार के साथ की गई संविदा से संबंधित दस्तावेजें और पत्र "राज्य के कार्यकलाप" से संबंधित नहीं है।[1]

3.5. ये साधारण स्थितियां कोई कठिनाई उपस्थित नहीं करती। किन्तु अभिव्यक्ति 'राज्य के कार्यकलाप' की दुर्बोधता उन विनिश्चयों से स्पष्ट होती है जो अन्य विषयों के बारे में दिए गए थे। उदाहरण की तौर पर, आय-कर अधिकारियों को दी गई विवरणियों और निर्धारण आदेश का उल्लेख किया जा सकता है। इस विषय पर विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध अधिनियमित किए जाने के पूर्व, यह ठहराया गया था कि आय-कर अधिकारी को प्रस्तुत की गई विवरणियां और उसके समक्ष किए गए कथन या उसके द्वारा किए गए आदेश 'राज्य के कार्यकलापों' (धारा 123) से संबंधित नहीं थे और न ही वे शासकीय विश्वास (धारा 124) में किए गए थे और संबंधित अधिकारी उन्हें पेश करने के लिए समनित किए जाने पर वैसा करने के लिए आबद्ध था।[2–3] आय-कर अधिनियम, 1922 की धारा 54 इन विनिश्चयों के पश्चात् ही अधिनियमित की गई थी। आय-कर अधिनियम, 1922 की धारा 54 (वर्तमान में आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 137) द्वारा यह अधिनियमित किया गया कि आय-कर प्राधिकारियों के समक्ष साक्ष्य में किए गए कथनों या उनके समक्ष पेश की गई विवरणियों, लेखाओं या दस्तावेजों को गोपनीय माना जाएगा और किसी लोक सेवा द्वारा उनका प्रकटन प्रतिषिद्ध था, और किसी पदधारी से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह कोई भी ऐसी दस्तावेज पेश करे या उसके संबंध में कोई साक्ष्य दे।

विभागीय जांच।

3.6. यह विनिश्चित करने में कि कोई विषय 'राज्य का कार्यकलाप' है या नहीं, जो कठिनाई उपस्थित होती है, वह लोक अधिकारी के आचरण के संबंध में विभागीय जांच के मामलों में साक्षियों द्वारा किए गए कथनों से संबंधित निर्णयज विधि से भी स्पष्ट होती है। प्रश्न तब उद्भूत होता है जबकि, विभागीय जांच के पश्चात्, दोषी लोक अधिकारियों को—सामान्यत: अवैध परितोषण प्रतिगृहीत करने के अपराध के लिए—अभियोजित किया जाता है। कलकत्ता उच्च न्यायालय[4] द्वारा यह ठहराया गया था कि ऐसे कथन धारा 123 से 125 तक के अधीन विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे, और अभियुक्त को धारा 153 के अधीन यह हक था कि वह उन कथनों के संबंध में, जो विभागीय जांच में साक्षियों द्वारा किए गए थे, साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करे। नागपुर उच्च न्यायालय[5] का भी यही मत था। दूसरी ओर, यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या विभागीय जांच के लिए लोक सेवक के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला है, सी० आई० डी० द्वारा किए गए गुप्त और गोपनीय अन्वेषण में साक्षियों द्वारा किए गए कथनों को लाहौर और उड़ीसा उच्च न्यायालयों द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त माना गया है।[6-7]

पंजाब के एक मामले में[8], प्रत्यर्थी सुरजीत सिंह ने पंजाब राज्य के विरुद्ध इस घोषणा के लिए वाद फाइल किया था कि अधिवार्षिकी आयु प्राप्त करने के पूर्व उसकी सेवा-निवृत्ति अवैध थी और भारत के संविधान के विभिन्न उपबंधों का अतिक्रमण करती थी। उसने विचारण न्यायालय से निवेदन किया कि विभाग को यह निदेश दिया जाए कि विभाग द्वारा वे चरित्रावलियां तथा गोपनीय रिपोर्टें पेश की जाएं जो विभाग में उसके स्वयं के तथा उन निरीक्षकों के, जो उससे कनिष्ट थे किन्तु जिन्हें सेवा में बनाए रखा गया था, संबंध में रखी गई थीं। राज्य ने इस आधार पर कि वे दस्तावेजें "राज्य के कार्यकलापों"

---

1. संपरिषद् गवर्नर जनरल वि पीर मोह०, ए० आई० आर 1950 पंजाब 228।
2. वेन्कटचेल्ला बनाम सम्पत चेटियार (1909) । आई० एल० आर० 32, 62; 19 मद्रास एल० जे० 263।
3. जदावरम बनाम बुल्लोराम (1899) आई० एल० आर० 26, कल० 281।
4. हरबन्स बनाम आर० 16 सी० डब्ल्यू, एन० 431।
5. इब्राहिम बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट, ए० आई० आर० 1936 नाग० 25।
6. नजीर बनाम आर० ए० आई० आर० 1944 लाहौर, 424।
7. जेम्स बुशी बनाम कलेक्टर आफ गंजाम,, ए० आई० आर० 1954, उड़ीसा 152।
8. पंजाब राज्य बनाम सुरजीत सिंग, ए० आई० आर० 1925, पं० और हरि० 11।

से संबंधित अप्रकाशित अभिलेख थे, धारा 123 के अधीन विशेषाधिकार का दावा किया। विचारण न्यायालय ने यह ठहराया कि ये दस्तावेजें "राज्य के कार्यकलापों" से संबंधित नहीं थीं और विशेषाधिकार को नामंजूर कर दिया। पुनरीक्षण में यह मामला उच्च न्यायालय के समक्ष आया। उच्च न्यायालय ने राज्य द्वारा फाइल की गई याचिका मंजूर कर ली और यह ठहराया कि राज्य के सेवकों के गुणागुण का उनके वरिष्ठों द्वारा समय-समय पर मूल्यांकन करने के प्रयोजनार्थ रखी गई चरित्रावलियां और रिपोर्टें एक अधिकारी द्वारा दूसरे अधिकारी को दी गई गोपनीय संसूचनाओं की प्रकृति की थीं और उस सामग्री के भागरूप थीं जो लोक सेवकों की दक्षता बनाए रखने के लिए आशयित थीं। उच्च न्यायालय ने यह भी ठहराया कि वे दस्तावेजें "राज्य के कार्यकलापों" से संबंधित थीं। उसने पूर्व के दो प्रतिकूल मामलों से असहमति व्यक्त की[1] इस प्रकार, एक ही उच्च न्यायालय में दो परस्पर विरोधी मत विद्यमान हैं।

3.7. पंजाब के एक मामले में, न्या० खोसला ने अभिव्यक्ति "राज्य के कार्यकलाप" की परिभाषा विकसित करने का प्रयत्न किया[2] और इसी परिभाषा का उसी उच्च न्यायालय में एक पश्चात्वर्ती मामले में अवलम्ब किया गया[3]। तथापि, एक पश्चात्वर्ती मामले में, उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील[4] में इस परिभाषा को परिपूर्ण नहीं माना गया। इस प्रकार, अभिव्यक्ति "राज्य के कार्यकलाप" व्यवहार में कुछ अस्पष्ट प्रतीत होती है। अस्पष्टता।

3.8. वास्तव में, लोक हित की हानि वह संकल्पना है जिसका भविष्य में भारत में सर्वोपरि महत्व होगा जैसा कि अन्य देशों में है। लोक हित की हानि।

अध्याय 4

वह प्राधिकारी जो विशेषाधिकार का दावा कर सकता है

4.1. उस प्राधिकारी को, जो विशेषाधिकार का दावा कर सकता है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 123 में विभाग के प्रमुख के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है। सरकार के प्रशासनिक ढांचे के सन्दर्भ में इस अभिव्यक्ति के सुनिश्चित अभिप्राय की सूक्ष्मताओं का विश्लेषण करने का हमारा आशय नहीं है। हम जिस बात पर जोर देना चाहेंगे वह यह है कि हमारी सिफारिश[5] के अनुसार, विभाग के प्रमुख द्वारा किया गया दावा अन्तिम और न्यायालय पर आबद्धकर नहीं होना चाहिए। विभाग का प्रमुख ऐसी समस्त सामग्री न्यायालय के समक्ष रख सकता है जो न्यायालय को दस्तावेज की प्रकृति से अवगत कराने और दावे की वैधता के बारे में उसे आश्वस्त कराने के लिए सुसंगत हो। इस बारे में कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, दावा न्यायानुमत है या नहीं, अन्तिम विनिश्चय न्यायालय के हाथ में होगा। न्यायालय को (जैसा कि वर्तमान में है) इस प्रयोजन के लिए मौखिक साक्ष्य लेने की शक्ति होगी। तथापि न्यायालय, मुख्यतः (दस्तावेज की) परीक्षा चेम्बर में करने के पश्चात् ही विनिश्चय करेगा। विभाग का प्रमुख।

4.2. एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न उस प्राधिकारी से संबंधित है जो विशेषाधिकार के दावे का परीक्षण करेगा। इसकी विवेचना अगले अध्याय[6] में की जाएगी।

---

1. (क) **भारत संघ** बनाम **राजकुमार**, ए० आई० आर०, 1967, पंजाब 387।
   (ख) **निरंजनदास** बनाम **पंजाब राज्य**, ए० आई० आर० 1968, पंजाब, 255।
2. **सपरिषद गवर्नर जनरल** बनाम **पीर मोह**०ए०आई० आर० 1950, पंजाब 228, 233 (खोसला, न्या०)।
3. **सोढ़ी सुखदेव सिंग** बनाम **राज्य**, ए० आई० आर० 1961, पंजाब 407।
4. **पंजाब राज्य** बनाम **सोढ़ी सुखदेव सिंग**, ए० आई० आर० 1961, एस० सी० 43 (1961) 2 एस० सी० आर० 37।
5. नीचे का अध्याय 5, 6 और 7।
6. नीचे का अध्याय 5।

अध्याय 5

वह प्राधिकारी जो विशेषाधिकार के प्रश्न को विनिश्चित करता है

भारतीय और आंग्ल विधि।

5.1. यह प्रश्न कि किसी विशिष्ट दस्तावेज के संबंध में सरकार के विशेषाधिकार की विद्यमानता या अविद्यमानता का प्रश्न कौनसा प्राधिकारी अवधारित करेगा, एक ऐसा प्रश्न है जिसके संबंध में हम भारतीय कानूनी विधि और आंग्ल विधि में बहुत अन्तर पाते हैं। यदि हम भारतीय साक्ष्य विधि में जो कुछ कहा गया है उसे शाब्दिक अर्थ में लेते हैं तो यह अवधारित करने की शक्ति सम्पृक्त विभाग के प्रमुख को है कि दस्तावेज को प्रकट किया जाए या नहीं। इंग्लैंड में, इसके विपरीत जब किसी दस्तावेज को पेश किए जाने के बारे में कोई आक्षेप किया जाता है तो यह विनिश्चित करने का अधिकार न्यायालय को होता है कि उस आक्षेप को मान्य किया जाना चाहिए[1]। भारतीय विधि और आंग्ल विधि के बीच का यह अन्तर भारत में किए गए न्यायिक विनिश्चयों द्वारा एक बड़ी सीमा तक कम हो गया है[2]।

शक्ति न्यायालय में विनिहित करने की आवश्यकता।

5.2. हमारे विचार से, यह बात कानून में ही स्पष्ट होनी चाहिए कि विशेषाधिकार के प्रश्न को विनिश्चित करने की शक्ति न्यायालय में निहित है। विशेषाधिकार का आधार "लोक हित"[3] को हानि है। लोक हित के दो पक्ष हैं—कतिपय सामग्री की गोपनीयता बनाए रखने में लोक हित, और समस्त ऐसी तथ्यात्मक सामग्री, जो मुकदमे में विवादग्रस्त विषय से सुसंगत हो, पेश करने में लोक हित। इन दोनों में बहुधा विरोध हो सकता है। इन बातों के बीच, जिनमें इस प्रकार प्रतिविरोध उत्पन्न होता है, सन्तुलन स्थापित करना अत्यन्त कुशल कार्य है, जिसे न्याय के हित में और ऐसा सन्तुलन स्थापित करने के कार्य के दक्ष सम्पादन की दृष्टि से न्यायपालिका पर छोड़ दिया जाना चाहिए, किसी अन्य अभिकरण पर नहीं। न्यायालय, प्रशिक्षण तथा अपनी स्थिति प्रज्ञाता के कारण ऐसे प्रश्नों के संबंध में विचार करने के लिए समुचित रूप से सज्जित हैं। जैसा कि सालमन, एल० जे० ने (जो कि वे तत्समय थे)[4] न्यायातिरिक्त एक लेख[4] में कहा है—

> यह प्रथम कोटि का महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्न है और उसका निर्धारण केवल न्यायालयों में हो सकता है—वस्तुतः कामन ला के प्रभुत्व वाला कोई ऐसा देश नहीं है जिसके न्यायालयों ने यह न माना हो कि ऐसी शक्ति—निःसंदेह यदा-कदा और अंतिम प्रयत्न के रूप में प्रयोग में लाए जाने के लिए—उनके पास हैं तथापि आवश्यकता पड़ने पर जिसका प्रयोग किया ही जा सकता है।

लार्ड जस्टिस सालमन ने इस शक्ति को सही न्याय प्रशासन के लिए महत्वपूर्ण निरूपित किया है।

वर्तमान धारा में दोष।

5.3. जब इस विषय पर इस परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाता है तो यह ज्ञात होता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 123 में प्रमुख दोष यह है कि वह विशेषाधिकार के मर्म, अर्थात् लोक हित की हानि, को प्रमुखता नहीं देती। विशेषाधिकार के आधारभूत उद्देश्य और मूल तर्क के वर्तमान उपबोध के अनुसार, यह पर्याप्त नहीं है कि दस्तावेजें "राज्य संबंधी विषयों" से संबंधित हैं। विषय ऐसे होने चाहिए कि उनका प्रकटन लोक हित के लिए हानिकर होगा। यहां तक कि 1931 में, प्रिवी काउन्सिल ने बहुधा उद्धृत किए जाने वाले एक मामले में स्थिति का वर्णन निम्नानुसार किया था—

> "इस नियम का सिद्धांत "लोक हित" की महत्ता है और तदनुसार यह नियम उस उद्देश्य की प्राप्ति से परे लागू नहीं किया जाएगा[5-6]।"

1. कान्वे बनाम रिम्मर (1968) 1 आल० ई० आर० 874 (एच० एल०) विशिष्टतः देखिए वार्थ-वाई-गेस्ट के लार्ड मारिस की स्पीच।
2. देखिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 162 पर निर्णयज विधि (साथ ही नीचे का पैरा 7.8)।
3. तुलना कीजिए—उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राजनारायण, ए० आई० आर० 1975 उच्चतम न्या० 865।
4. लार्ड जस्टिस सालमन, "वेंच : दी लास्ट बुलवर्क आफ इन्डीविजुअल लिबर्टी" (1967)। पुन: मुद्रित (1967) 69 बाम्बे एल० आर० (जर्नल) 123।
5. राबिन्सन बनाम स्टेट आफ साउथ आस्ट्रेलिया, ए० आई० आर० 1931 पी० सी० 704, 719।
6. तुलना कीजिए—सन्के बनाम हिटलम (1978) 21 ए० एल० आर० 505 (आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय)।

5.4. इस विषय पर निर्णयज विधि की समीक्षा रे, मुख्य न्या० द्वारा की गई है[1] जिन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि: "अंतिम विश्लेषण में दस्तावेज की विषयवस्तु इस प्रकार वर्णित है कि यह तुरन्त परिलक्षित हो सके कि लोक हित में दस्तावेजों को विधारित किया जाना है।" इस विषय पर अधिकांश कामनवेल्थ विनिश्चयों[2] में सन्तुलन स्थापित करने के पहलू पर—जिस पहलू पर आधुनिक समय में अमरिका में[3] भी जोर दिया गया है—बल दिया गया है। वह कसौटी जिसके द्वारा क्राउन के विशेषाधिकार का सिद्धांत प्रवर्तित होता है, लार्ड रैडक्लिफ द्वारा एक स्काटिश अपील में समुचित रूप से अभिव्यक्त किया गया है[4]। उन्होंने कहा: "अतः न्यायालय के लिए आरक्षित शक्ति, पेश करने का आदेश देने की शक्ति है, भले ही लोक हित कुछ हद तक प्रतिकूलतः प्रभावित क्यों न होता हो। इसका तात्पर्य इस बात को मान्यता देना है कि इस प्रश्न को कि क्या पक्षकारों के बीच के किसी सिविल वाद में कोई दस्तावेज, जो एक पक्षकार को उपलब्ध होगा वह उस पक्षकार को उपलब्ध नहीं होगा जो क्राउन के साथ वाद में संलग्न है, समीक्षा करने में लोक हित के एक से अधिक पहलुओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक हो सकता है। सरकार के हित, जिनके लिए मंत्री को पूरे प्राधिकार के साथ बोलना चाहिए, लोक हित को निःशेष नहीं करते। उस हित का एक अन्य पहलू इस आवश्यकता में परिलक्षित होता है कि विधि न्यायालयों में न्याय किया जाना चाहिए, कम से कम नागरिक और क्राउन के बीच तो किया ही जाना चाहिए, और यह कि उस वादार्थी को, जिसे अपने मामले का समर्थन करना है, अपने मामले को समुचित रूप से प्रस्तुत करने के साधनों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। मुझे यह आशा करना अयुक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि न्यायालय अपने समक्ष के किसी विशिष्ट मामले में इन सिद्धान्तों को लागू करने के महत्व को जानने समझने में मंत्री की अपेक्षा अधिक अर्हित है।"

उच्चतम न्यायालय का निर्णय।

अध्याय 6

विशेषाधिकार का दावा करने और उसे विनिश्चित करने के लिए सामग्री

6.1. उस सामग्री में, जिस पर कि विवेचनाधीन विशेषाधिकार दावा आधारित किया जा सकता है, साधारणतः निम्नलिखित बातें समाविष्ट होती हैं:—

सामग्री।

(क) प्रथम बार फाइल किए गए शपथपत्र,

(ख) अतिरिक्त शपथपत्र, जब न्यायालय द्वारा उनकी अपेक्षा की जाए,

(ग) मूल दस्तावेज (जब पेश किए गए हों),

(घ) मौखिक साक्ष्य (अनुज्ञेय सीमा तक)।

प्रथम दो के बारे में कोई समस्या उद्भूत नहीं होती क्योंकि (क) पक्षकारों से ऐसे शपथपत्र फाइल की जाने की आशा की जा सकती है, जिनके बारे में उन्हें सलाह दी जाए[5], और (ख) शपथपत्र फाइल करने का निदेश पक्षकारों को देने की आवश्यक शक्ति न्यायालय के पास बनी रहनी चाहिए।[6] तृतीय (मूल दस्तावेज) के बारे में हम यह सिफारिश कर रहे हैं कि वह प्रत्येक मामले में निरीक्षण के लिए खुली रहनी चाहिए।[7]

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राजनारायण, ए० आई० आर० 1975 उच्चतम न्या० 865, 875, 876, पैरा 41।
2. (क) रोजर्स बनाम होम सेक्रेटरी (1923) ए० सी० 388, 406, 412।
(ख) कोनिया बनाम मारले (1976) 1 एन० जेड० एल० आर० 455,
(ग) ग्लासगो कार्पो० बनाम सेन्ट्रल लैण्ड बोर्ड, (1956) एस० सी० 1, 18, 19 (एच० एल०),
(घ) रि: ग्रासवेनर होटल लन्दन नं० 2 (1965), पं 1218, 1246।
3. यू० एस० बनाम निक्सन (1974) 418, यू० एस० 683।
4. ग्लासगो कार्पो० बनाम सेन्ट्रल लैण्ड बोर्ड (1956) एस० सी० 1, 18, 19 (एच० एल०)।
5. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राजनारायण, ए० आई० आर० 1975, उच्चतम न्या० 865।
6. उत्तर प्रदेश राज्य, बनाम राजनारायण, ए० आई० आर० 1975, उच्चतम न्या० 865।
7. नीचे का अध्याय 7।

जहां तक अन्तिम पहलू—मौखिक साक्ष्य—का संबंध है, न्यायालय को अभी भी यह शक्ति है कि वह उसकी अपेक्षा करे। यदि—जैसी कि हमारी सिफारिश है—विधि इस बात पर बल देती है कि वह दस्तावेज (जिसके बारे में विशेषाधिकार का दावा किया गया है) न्यायालय द्वारा कोष्ठ में निरीक्षण किए जाने हेतु प्रस्तुत की जानी चाहिए[1] तो मौखिक साक्ष्य के अवसर एक बड़ी सीमा तक कम हो जाएंगे।

पेश किए जाने के संबंध में स्थिति।

6.2. पेश किए जाने के बारे में, धारा 123 विभाग के प्रमुख की अनुज्ञा का उल्लेख करती है। 1961 में उच्चतम न्यायालय के बहुमत निर्णय द्वारा यह ठहराया गया था[2] कि धारा 123 के अधीन विशेषाधिकार का दावा किया जाने पर न्यायालय प्रारंभिक जांच करने और दस्तावेज के पेश किए जाने के संबंध में किए गए आक्षेप की विधिमान्यता का अवधारण करने के लिए सक्षम और वास्तव में आबद्ध है। इसमें आवश्यक रूप से इस प्रश्न की जांच अन्तर्ग्रस्त है कि क्या साक्ष्य "राज्य के कार्यकलापों" से संबंधित है या नहीं।

धारा 123 के अधीन विशेषाधिकार का दावा करने वाले विभाग के प्रमुख को सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। **अमरचन्द** वि० **भारत संघ**[3] में (भारत के उच्चतम न्यायालय का निर्णय **कान्वे वि० रिम्मर**[4] के इंग्लैण्ड के केस में अपील न्यायालय द्वारा उद्धृत किया गया) यह पहलू महत्वपूर्ण बन गया था। उस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने विशेषाधिकार का दावा इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि गृह मंत्री के कथन से यह प्रकट नहीं होता था कि उन्होंने दस्तावेज की विषय-वस्तु पर गंभीरता से सोच विचार किया था, या यह कि उन्होंने इस प्रश्न का परीक्षण किया था कि उनके प्रकटन से लोक हित की हानि होगी। उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अपने विचार व्यक्त किए—

> इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि धारा 123 विभाग के प्रमुख को व्यापक शक्तियां प्रदत्त करती है, विभाग के प्रमुखों को धारा 123 के अधीन के अपने अधिकारों का प्रयोग करने में अत्यधिक सावधानी से कार्य करना चाहिए और केवलमात्र या मुख्यतः इस आधार पर विशेषाधिकार का दावा नहीं करना चाहिए कि प्रश्नगत दस्तावेज के प्रकटन से राज्य द्वारा किया प्रतिवाद विफल हो जाएगा। इस आधार पर कि प्रकटन से राज्य के कार्यकलापों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, विशेषाधिकार का दावा करने से सुसंगत तर्कों को समीचीनता के तर्कों से सदैव अलग रखा जाना चाहिए।

भारत में शपथपत्रों के बारे में पद्धति।

6.3. यह सुविदित है कि भारत में पद्धति यह है कि विभाग का प्रमुख, राज्य की ओर से आक्षेपों तथा सुसंगत कारणों को वर्णित करते हुए शपथपत्र देता है। एक अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्तमान पद्धति को इस प्रकार वर्णित किया गया था[5]—

> हमारे देश में अब सुस्थापित पद्धति यह है कि आक्षेप विभाग के प्रमुख द्वारा प्रतिज्ञात शपथपत्र द्वारा किया जाता है। न्यायालय मंत्री से भी शपथपत्र अभिज्ञात करने की अपेक्षा कर सकता है। वह स्थिति न्यायालय द्वारा इस बारे में जांच की जाने के अनुक्रम में उद्भूत होगी कि क्या दस्तावेजों को प्रकटन से विधारित किया जाए। यदि न्यायालय का शपथपत्र द्वारा दिए गए साक्ष्य से यह समाधान हो जाता है कि दस्तावेज को पेश किए जाने से लोक हित में संरक्षित किया जाना चाहिए तो मामला वहीं समाप्त हो जाता है। यदि न्यायालय इसके बाद भी अपना समाधान करना चाहे तो न्यायालय दस्तावेज को देख सकता है। यह न्यायालय द्वारा दस्तावेज का निरीक्षण होगा। पेश किए जाने तथा

1. नीचे का अध्याय 7।
2. **पंजाब राज्य** बनाम **सोढी सुखदेव सिंग,** ए० आई० आर० 1961, उच्चतम न्या० 493 (1961), 2 एस० सी० आर० 372।
3. **अमरचन्द** बनाम **भारत संघ,** ए० आई० आर० 1964 उच्चतम न्या० 1958, 1961 (एस० सी० आर० में रिपोर्ट नहीं किया गया)।
4. **कान्वे** बनाम **रिम्मर** (अपील न्यायालय में)।
5. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **राजनारायण,** ए० आई० आर० 1975 उच्चतम न्या० 865, 876, पैरा 42।

ग्राह्यता के बारे में साक्ष्य अधिनियम की धारा 162 में अनुध्यात आक्षेप का विनिश्चय, कि जैसा इस न्यायालय द्वारा **सुखदेव सिंग** के मामले में स्पष्ट किया गया है, न्यायालय द्वारा जांच में किया जाता है।

इस न्यायालय ने यह कहा है कि जहां कोई शपथपत्र फाइल न किया गया हो, वहां बाद में शपथपत्र फाइल किए जाने का निदेश दिया जा सकता है। इंग्लैंड में **ग्रासवेनर होटल, लन्दन** के मामलों—(1963) 2 आल० ई० आर० 426, (1964) 1 आल० ई० आर० 92, (1964) 2 आल० ई० आर० 674 तथा (1964) 3 आल० ई० आर० 354 (जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है)—से यह प्रकट होता है कि यदि शपथपत्र दोषपूर्ण हो, तो बेहतर शपथपत्र फाइल करने का अवसर दिया जा सकता है। यह विनिश्चित करना न्यायालय का कार्य है कि क्या शपथपत्र दस्तावेज की प्रकृति के विषय में किए गए आक्षेप के बारे में स्पष्ट है। न्यायालय उस संबंध में अतिरिक्त शपथपत्र फाइल किए जाने का निदेश दे सकता है। यदि न्यायालय का शपथपत्रों से समाधान हो जाता है तो न्यायालय प्रकटन से इन्कार कर देगा। यदि न्यायालय शपथपत्र के बावजूद भी दस्तावेज का निरीक्षण करना चाहता है तो वह वैसा कर सकेगा।

6.4. आन्ध्र के एक मामले[1] में यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि फाइल पर लिखी गई टिप्पणियां और कार्यवृत विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के अन्तर्गत आते हैं और उन्हें पेश किए जाने से छूट प्राप्त थी। अपर मुख्य सचिव द्वारा दावा किए गए विशेषाधिकार को, धारा 123 को दृष्टिगत रखते हुए प्रश्नगत नहीं किया जा सकता था। यह ठहराया गया कि शपथपत्र में ऐसी कोई बात नहीं थी जो यह दर्शित करती हो कि लिखी गई टिप्पणियां लोक नीतियों के अवधारण और कार्यान्वयन के बारे में मत व्यक्त किए जाने से संबंधित हैं—जो परीक्षण [2]**सुखदेव सिंग के मामले** में उल्लिखित किया गया है। **आन्ध्र का मामला।**

अध्याय 7

विशेषाधिकार के अवधारण के लिए तत्व

7.1. अब उपर्युक्त विषय-बिन्दुओं के प्रकाश में धारा 162 का विश्लेषण किया जा सकता है। धारा 162 में चार बातें समाविष्ट हैं— धारा 162 का विश्लेषण।

(क) किसी दस्तावेज को पेश करने के लिए समनित व्यक्ति का उसे न्यायालय में लाने का कर्तव्य,

(ख) ऐसे आक्षेपों को, जो उसे (साक्ष्य में) पेश किए जाने के या उसकी ग्राह्यता के बारे में हों, विनिश्चित करने की न्यायालय की शक्ति,

(ग) ऊपर (ख) में निर्दिष्ट शक्ति का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया, और

(घ) दस्तावेज का अनुवाद।

7.2. जहां एक प्रथम विषय-बिन्दु (पेश करने का कर्तव्य) का संबंध है, यह ध्यान देने योग्य बात है कि दस्तावेज न्यायालय में लाने और उसे साक्ष्य में पेश करने में अन्तर है। जब किसी व्यक्ति को कोई दस्तावेज पेश करने के लिए समनित किया जाता है—पद "पेश करना" का प्रयोग प्रक्रिया संबंधी दो संहिताओं में भी किया गया है—तो उस व्यक्ति को उसे न्यायालय में लाना चाहिए। यह सादा और प्राथमिक उपबंध वस्तुतः यह (क) पेश किया जाना।

1. **आर० रमन्ना** बनाम **आं० प्र० सरकार,** ए० आई० आर० 1971 आं० प्र० 196।
2. **सुखदेव सिंग का मामला,** ए० आई० आर० 1961 उच्चतम न्या० 493, 502।

महत्वपूर्ण विवक्षा उत्पन्न करता है कि किसी व्यक्ति को कोई दस्तावेज साक्ष्य में उपयोग के लिए देने में भले ही कोई आक्षेप हो, उसे वह दस्तावेज न्यायालय में लानी चाहिए। दस्तावेज का भौतिक रूप से पेश किया जाना बाध्यकर है। उसके विधिकतया पेश किए जाने के बारे में किसी आक्षेप को, चाहे वह इस आधार पर हो कि वह दस्तावेज वाद से सुसंगत नहीं है या इस आधार पर हो कि वह दस्तावेज, यद्यपि सुसंगत है तथापि कानूनी वर्जन के आधार पर अग्राह्य है, अवधारित करने का कार्य समनित व्यक्ति का नहीं है। इस अर्थ में, "पेश किए जाने" के बारे में किए गए आक्षेप को केवल न्यायालय विनिश्चित करेगा। भौतिक रूप से पेश करना उस व्यक्ति पर आज्ञापक है जिससे न्यायालय द्वारा वैसा करने की अपेक्षा की गई है।

न्यायालय द्वारा निरीक्षण और दस्तावेज का निरीक्षण के लिए पेश किया जाना।

7.3. इस प्रश्न से कोई गंभीर कठिनाई उपस्थित नहीं होनी चाहिए थी। एक बार यह स्थापित हो जाने पर कि विशेषाधिकार का दावा न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाना चाहिए, तर्कसंगत मार्ग यही होना चाहिए था कि न्यायालय को समस्त सामग्री का परीक्षण करने देना चाहिए। निश्चित ही दस्तावेज स्वतः सर्वोत्तम साक्ष्य होगा और सर्वोत्तम साक्ष्य (यदि वह अस्तित्व में है) न्यायालय के समक्ष होना ही चाहिए। साक्ष्य अधिनियम की धारा 162 के कारण यह विषय अनावश्यक रूप से जटिल हो गया है। धारा 162 "राज्य की बातों" से सम्बन्धित दस्तावेज को न्यायालय द्वारा निरीक्षण किए जाने से अपवर्जित करती है। इस विषयस्थिति पर विधि आयोग द्वारा साक्ष्य अधिनियम पर अपनी रिपोर्ट में विस्तृत चर्चा की गयी है, और हम यहां यह अभिलिखित करना चाहेंगे कि हम उस रिपोर्ट में लिए गए दृष्टिकोण से तथा इस विधि के संशोधन के लिए की गई सिफारिशों से पूर्णतः सहमत हैं। इस रिपोर्ट के लिखे जाने के पश्चात् से, अन्य देशों में हुए विकास ने उन दस्तावेजों का, जिनके बारे में यह दावा किया जाता है कि उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त है, निरीक्षण न्यायालय द्वारा किए जाने की वांछनीयता पर पुनः बल दिया है। निःसंदेह, निरीक्षण चेम्बर्स में होना चाहिए जिस पर विधि आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट शब्दों में बल दिया गया है। इस रक्षोपाय—जो इस मामले में सर्वोपरि महत्व का है—के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय को दस्तावेज का निरीक्षण करने की शक्ति होनी चाहिए। इसका कोई अपवाद नहीं होना चाहिए और इस तर्क के आधार पर, साक्ष्य अधिनियम की धारा 162 में निश्चित रूप से संशोधन अपेक्षित होगा।

वे दस्तावेजें जो कब्जे में या शक्त्याधीन नहीं हैं।

7.4. (ऊपर स्पष्ट किए गए अर्थ में) भौतिक रूप से पेश किए जाने के बारे में भी कभी-कभी कठिन प्रश्न उद्भूत हो सकते हैं, जहां कि कोई दस्तावेज पेश करने के लिए समनित व्यक्ति यह आक्षेप करता है कि वह दस्तावेज उसके शक्त्याधीन नहीं है। इस सन्दर्भ में, महत्वपूर्ण शब्द—"कब्जा या शक्ति" हैं। जहां दस्तावेज अनन्यरूपेण साक्षी के नियंत्रण में है और कोई अन्य उस पर नियंत्रण का दावा करता है, वहां धारा 162 के प्रथम भाग के कारण कोई कठिनाई नहीं हो सकती। किन्तु कठिनाई तब उद्भूत हो सकती है जब साक्षी किसी अन्य व्यक्ति के साथ, जो न्यायालय के समक्ष नहीं है, दस्तावेज को संयुक्ततः कब्जे में रखता है। ऐसे मामले में, यह विनिश्चित करने में कि क्या दस्तावेज पेश करने के लिए साक्षी को विवश किया जाना चाहिए, न्यायालय सामान्यतः ऐसी कार्यवाही करेगा जो परिस्थितियों में न्यायसंगत हो। यह पहलू बम्बई के एक मामले[1] में विचारार्थ उपस्थित हुआ था। इंग्लैंड के मामलों की समीक्षा करने के पश्चात्, यह विचार व्यक्त किया गया कि यह मामला इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या प्रतिवादी, भौतिक अर्थ में वह दस्तावेज पेश कर सकता था और क्या विधिकतया उसे वह दस्तावेज पेश करनी चाहिए जब कि प्रतिवादी से भिन्न हित रखने वाला कोई अन्य व्यक्ति नहीं है।

किन्तु किसी ऐसे व्यक्ति को, जो दस्तावेजों को वास्तविक अभिरक्षा में रखता है, इस बात के लिए विवश किया जा सकता है कि वह उन्हें पेश करे भले हीं वे दस्तावेज किन्हीं अन्य व्यक्तियों के स्वामित्व के हों।

1. हाजी जहारिया कासिम बनाम हाजी कासिम (1876) आई० एल० आर० 1 बम्बई 496, 499।

धारा 161 के प्रथम भाग के अधीन, दस्तावेज को न्यायालय में अवश्य लाया जाना चाहिए। दस्तावेज को साक्ष्य में पेश किए जाने से, द्वितीय भाग के अधीन अवमुक्ति उस दशा में दी जाएगी जबकि उस दस्तावेज को प्रकट किए जाने से विशेषाधिकार प्राप्त हों।

(ख) आक्षेप का विनिश्चय।

7.5. इस धारा के द्वितीय भाग में अभिव्यक्त रूप से यह अधिकथित है कि आक्षेप की विधिमान्यता केवल न्यायालय ही विनिश्चित कर सकता है। तथापि, धारा 123 और धारा 162 में असंगतता है। धारा 123 के अन्तिम पैरा में यह शक्ति विभाग के प्रमुख को दी गई है कि वह अनुज्ञा दे या उसे निर्धारित करे, जैसा भी कि वह ठीक समझे किन्तु धारा 162 यह शक्ति न्यायालय को देती है। यह विसंगति दूर करना आवश्यक है और यह धारा 123 के विसंगत भाग को निकाल देने से संभव हो सकता है।

(ग) तन्त्र।

7.6. धारा 162 के द्वितीय भाग (विशेषाधिकार के विवाद्यक का न्यायनिर्णयन) को कार्यान्वित करने के लिए, किसी तन्त्र की स्पष्टतः आवश्यकता है। यह धारा 162 का तृतीय भाग है। तत्वतः इसमें दो विभिन्न विषय समाविष्ट हैं:

(एक) दस्तावेज का निरीक्षण—उस दशा में जबकि दस्तावेज "राज्य की बातों" से संबंधित न हो, यह शक्ति न्यायालय को दी गई है,

(दो) अपने को आक्षेप का विनिश्चय करने के लिए समर्थ बनाने के लिए, न्यायालय द्वारा अन्य साक्ष्य का लिया जाना।

विषमता।

7.7. जहां तक कि धारा 123 "राज्य की बातों" से संबंधित दस्तावेजों का निरीक्षण करने की न्यायालय की शक्ति का अपवर्जन करती है, वह एक ऐसा उपबंध उपस्थित करती है जो—यदि अन्याय की बात न भी की जाए—विषम और गंभीर असंगति उत्पन्न करने वाला है। वह विषम इसलिए है कि दस्तावेज का निरीक्षण उसकी प्रकृति और मर्मभूत स्वरूप को समझने का सर्वोत्तम तरीका है। न्यायालय को इस अपरिहार्य तन्त्र से वंचित करना उसकी भूमिका को निरर्थक बना देना है। मूल साक्ष्य के स्थान पर अन्य साक्ष्य प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। यह उपबंध धारा 162 के उस भाग से भी असंगत है जिसमें यह धारणा की गई है कि विशेषाधिकार का प्रश्न न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाएगा। अन्ततः यह उपबन्ध अन्याय को जन्म देता है क्योंकि किसी हद तक अपर्याप्त साक्ष्य पर, किसी उपयोगी दस्तावेज को अपवर्जित कर दिया जा सकता है। इस पहलू पर अविलम्ब ध्यान देने की आवश्यकता है एकमात्र सन्तोषजनक मार्ग यही है कि अपवाद को हटा दिया जाए। जैसा कि लार्ड मारिस ने कहा है[1]—

> जब भी किसी सुसंगत दस्तावेज के पेश किए जाने के सम्बन्ध में आक्षेप किया जाता है, तो यह विनिश्चित करना न्यायालय का काम है कि क्या उस आक्षेप को मान्य किया जाए—न्यायालय की शक्ति के अन्तर्गत दस्तावेजों की प्राइवेट तौर पर परीक्षा करने की शक्ति भी आनी चाहिए।

उच्चतम न्यायालय का मामला।

7.8. इस संबंध में, **उत्तर प्रदेश राज्य वि० राजनारायण** के मामले[2] में व्यक्त किए गए विचारों का उल्लेख किया जा सकता है जो निम्नानुसार थे:—

> जैसा कि उस मामले[3] में ठहराया गया था कि न्यायालय को दस्तावेज का निरीक्षण करने की शक्ति नहीं है, यह समझ पाना कठिन है कि न्यायालय, लोक हित पर दस्तावेजों के प्रकटन के संभावित परिणाम के बारे में जांच किए बिना, यह कैसे जान पाएगा कि दस्तावेज राज्य के कार्यकलापों से संबंधित है क्योंकि परिकल्पनात्मक रूप से कोई दस्तावेज केवल तभी राज्य के कार्यकलापों से

---

1. **कान्वे बनाम रिम्मर** (1964) 1 आल० ई० आर० 874, 880 (एच० एल०)।
2. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राजनारायण**, ए० आई० आर० 1975, उच्चतम न्यायालय 882, 883, पैरा 69 (मैथ्यू, न्या० के अनुसार)।
3. **पंजाब राज्य बनाम सोढ़ी सुखदेवसिंह** ए० आई० आर० 1961, पंजाब, 493, 567, पैरा 94।

संबंधित हो सकती है जब उसके प्रकटन से लोक हित को हानि हो। यह हो सकता है कि कुछ वर्गों की दस्तावेजें ऐसी हैं जो प्रारंभ से ही इस अर्थ में हानिकर हैं कि कोई जांच किए बिना ही यह कहना सम्भव हो सकता है कि उनके स्वरूप के कारण उनका प्रकटन लोक हित के लिए हानिकर होगा। किन्तु कुछ अन्य ऐसी भी दस्तावेजें हैं जो हानिकर की श्रेणी में नहीं आतीं किन्तु फिर भी उनका प्रकटन लोक हित के लिए हानिकर होगा। धारा 162 के अधीन की जाने वाली जांच इस आक्षेप की विधिमान्यता की जांच है कि दस्तावेज राज्य के कार्यकलापों से संबंधित अप्रकाशित शासकीय अभिलेख है और इसलिए उससे व्युत्पन्न साक्ष्य देने की अनुज्ञा देने से इंकार कर दिया जाता है। आक्षेप यह होगा कि वह दस्तावेज राज्य के गोपनीय कार्यकलापों से संबंधित है और उसके प्रकटन की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती; क्योंकि, विभाग का प्रमुख आफिसर किसी दस्तावेज के पेश किए जाने के संबंध में आक्षेप क्यों करेगा यदि वह उसे प्रकट किए जाने की अनुज्ञा इसके बाद भी देने के लिए तैयार है कि वह राज्य के गोपनीय कार्यकलापों से संबंधित है? धारा 162 उस आक्षेप की जांच संकल्पित करती है और यह विनिश्चित करने के लिए कि क्या आक्षेप विधिमान्य है, न्यायालय को साक्ष्य लेने के लिए सशक्त करती है। अतः न्यायालय को दो बातों पर विचार करना होता है—क्या दस्तावेजें राज्य के गोपनीय कार्यकलापों से संबंधित हैं, और क्या उनसे उत्पन्न साक्ष्य दिए जाने की अनुज्ञा देने से किया गया इंकार लोक हित में था। निःसंदेह, धारा 123 में प्रयुक्त शब्द "जैसा करना वह ठीक समझे" ऐसी अनुज्ञा देने या उसे विधारित करने का पूर्ण विवेकाधिकार विभाग के प्रमुख को प्रदत्त करते हैं। जैसा कि मैंने कहा है, न्यायालय में कोई प्रश्न केवल तभी उद्‌भूत हो सकता है जबकि आफिसर किसी दस्तावेज को प्रकट करने से इंकार कर देता है और तब साक्ष्य अधिनियम की धारा 162 उस स्थिति को नियंत्रित करेगी। आक्षेप की विधिमान्यता को अन्तिम रूप से विनिश्चित करने की अध्यारोही शक्ति धारा 162 के अधीन अभिव्यक्त शब्दों में न्यायालय को प्रदत्त की गई है। न्यायालय आक्षेप को नामंजूर कर देगा यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वह दस्तावेज राज्य के कार्यकलापों से संबंधित नहीं है या यह कि लोक हित उसके अप्रकटन को विवश नहीं करता या यह कि किसी विशिष्ट मामले में न्याय प्रशासन द्वारा पूरा किया जाने वाला लोक हित समस्त अन्य पहलुओं पर अभिभावी है। यह निष्कर्ष इस तथ्य से निसृत होता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 162 के प्रथम भाग में न्यायालय के विनिश्चय की व्याप्ति की कोई सीमा नहीं है यद्यपि द्वितीय भाग में जांच का तरीका शर्तों द्वारा आबद्ध है। अतः यह स्पष्ट है कि भले ही विभाग के प्रमुख ने अनुज्ञा देने से इन्कार कर दिया हो, न्यायालय को इस बात की स्वतंत्रता है कि वह दस्तावेज की परीक्षा करने के पश्चात्, इस प्रश्न पर विचार करे और यह देखे कि क्या उस दस्तावेज का प्रकटन लोक हित के लिए हानिकर होगा, और धारा 123 के पश्चात्‌वर्ती भाग में प्रयुक्त पद "जैसा करना वह ठीक समझे" उस प्रश्न का विनिश्चय नए सिरे से करने से नहीं रोकता क्योंकि धारा 162 न्यायालय को इस बात के लिए प्राधिकृत करती है कि वह आक्षेप की विधिमान्यता अंतिम रूप से विनिश्चित करे (देखिए सुखदेव सिंग के मामले में न्या० सुब्बाराव का सम्मत निर्णय)।

यहां यह उल्लिखित किया जा सकता है कि वर्तमान में किसी ऐसी दस्तावेज का, जो "राज्य की बातों" से संबंधित है, निरीक्षण, धारा 162 द्वारा प्रतिषिद्ध है। अमरचन्द के मामले में,[1] अपीलार्थी ने प्रत्यर्थियों, संघ और राज्य से कुछ दस्तावेजें पेश करने की अपेक्षा की। प्रत्यर्थियों ने विशेषाधिकार का दावा किया। उच्चतम न्यायालय ने दस्तावेजों

1. अमरचन्द बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1964 उच्चतम न्या० 1958।

को देखा और वह इस बात से संतुष्ट था कि विशेषाधिकार का दावा न्यायानुमत नहीं था इस मामले से यह स्पष्ट होता है। कि यह अवधारित करने के लिए कि क्या विशेषाधिकार का दावा न्यायानुमत है, निरीक्षण किस प्रकार आवश्यक हो जाता है।

हम इस विषय पर आन्ध्र के एक मामले[1] का भी उल्लेख कर सकते हैं।

7.6. धारा 162 के अंतिम भाग (अनुवाद) से कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। (घ) अनुवाद।

अध्याय 8

प्रक्रिया संबंधी संहिताएं

8.1. प्रक्रिया के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न का, जो विचार किए जाने योग्य है, यहां उल्लेख किया जा सकता है। जब किसी दस्तावेज के संबंध में धारा 123 के अधीन यह दावा किया जाता है कि वह विशेषाधिकार प्राप्त है, और न्यायालय उस प्रश्न को एक या दूसरी तरह से अवधारित करता है, तब स्वाभाविक रूप से प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या उस प्रश्न को इस प्रकार अवधारित करने वाले विनिर्णय के विरुद्ध अपील का अधिकार होना चाहिए, और यदि हां तो किन मामलों में और किस न्यायाधिकरण को। उस प्रश्न पर विचार करते समय, किसी विशिष्ट मामले में इस प्रकार दावा किए गए विशेषाधिकार की पुष्टि करने वाले विनिर्णय और उसे नामंजूर करने वाले विनिर्णय के बीच अन्तर किया जा सकता है। विशेषाधिकार मंजूर करने वाले विनिर्णय पर, उस मामले में अंतिम अवधारण हो जाने के पश्चात् अपील में आक्षेप किया जा सकता है। चाहे वह किसी सिविल मामले में डिक्री या अन्य अन्तिम आदेश हो और किसी आपराधिक मामले में दोषसिद्धि या दोष-मुक्ति का निर्णय या अन्य अन्तिम आदेश हो। अपील के किसी पृथक् अधिकार की आवश्यकता नहीं है और ऐसे अधिकार का अभाव प्राइवेट वादार्थी के हितों पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा किसी विशिष्ट दस्तावेज को साक्ष्य में ग्रहण करने की जिसकी प्रार्थना विशेषाधिकार की पुष्टि करके नामंजूर कर दी गई है। किन्तु विशेषाधिकार नामंजूर कर दिए जाने की स्थिति भिन्न है। उस स्थिति में, दस्तावेज सीधे साक्ष्य में जाएगा। यदि अन्ततः, अपील में दस्तावेज को विशेषाधिकार प्राप्त मान लिया जाता है तो विषम स्थिति उत्पन्न हो सकती है। वह अपहानि, जिसे रोकने के लिए विशेषाधिकार आशयित है (लोक हित को हानि) तब पहले ही हो चुकी होगी। अपील न्यायालय का कोई भी विनिर्णय (भले ही वह विशेषाधिकार की पुष्टि करता हो), जहां तक उस विशिष्ट मुकदमे का संबंध है, उस दशा में केवल शास्त्रीय महत्व का रह जाएगा। इसे दृष्टिगत रखते हुए, समुचित न्यायाधिकरण को अपील किए जाने का तत्कालिक और पृथक् अधिकार न्याय के हितों की दृष्टि से आवश्यक प्रतीत होता है। हम समझते हैं यह मार्ग अपनाया जाना चाहिए चाहे कार्यवाहियां सिविल हों या दाण्डिक। अपील का अधिकार—आवश्यकता।

8.2. तत्पश्चात्, जहां तक न्यायाधिकरण का संबंध है, हमारी राय यह है कि विचारण न्यायालय की प्रास्थिति या कार्यवाहियों की प्रकृति का विचार किए बिना, विशेषाधिकार के दावे को नामंजूर करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय को होनी चाहिए। अपील का न्यायाधिकरण।

इस निष्कर्ष के पहुंचने के लिए दो कारणों ने हमें प्रेरित किया है। प्रथमतः, यह प्रश्न ऐसी प्रकृति का है कि प्रक्रिया संबंधी विधि को यह सुलभ बनाना चाहिए यह विषय राज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अविलम्ब विनिश्चित किए जाए। द्वितीयतः, सीधे उच्च न्यायालय को अपील किए जाने से मध्यवर्ती प्रक्रम समाप्त हो जाएंगे और त्वरित निर्णय सुलभ हो सकेगा। सामान्यतः, ऐसे मामलों में अन्तर्ग्रस्त संविवाद नाजुक प्रकृति के हैं और यह वांछनीय है कि विधिक ढांचे के भीतर ऐसे संविवादों का समाधान निकालने में असम्यक् विलम्ब नहीं

1. आर० रमन्ना बनाम आं०प्र० शासन, ए० आई० आर० 1971 आं० प्र० 196।

किया जाना चाहिए। अतः हम यह सिफारिश करेंगे कि प्रक्रिया संबंधी दोनों संहिताएं—सिविल और दाण्डिक—ऊपर चर्चित विषय-बिन्दुओं को समाविष्ट करने के लिए इस विषय पर यथोचित उपबंध अन्तःस्थापित करके संशोधित की जानी चाहिए।

अपील के संबंध में लार्ड रीड के विचार।

8.3. यह उल्लेख किया जा सकता है कि सरकार को अपील का अधिकार देने का सुझाव लार्ड रीड द्वारा **कान्वे के मामले**[1] में दिया गया था—

"तथापि, यह महत्वपूर्ण है कि इसके पूर्व कि दस्तावेज पेश किया जाए, अपील करने का अधिकार मंत्री को होना चाहिए। इस विषय का आपके समक्ष की गई बहस में पूरी तरह अन्वेषण नहीं किया गया था, किन्तु यह निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि एक या अन्य तरीके से अपील हो सकती है, यदि दस्तावेज क्राउन के किसी सेवक की या किसी ऐसे व्यक्ति की अभिरक्षा में हो जो मंत्री से सहयोग करने के लिए सहमत है। कठिनाई वहां हो सकती है यदि वह किसी ऐसे व्यक्ति के पास हो जो उसे पेश करना चाहता है। तथापि, वह कठिनाई आज हो सकती है यदि कोई साक्षी कोई ऐसा साक्ष्य देना चाहता है जिसके दिए जाने को रोकने के लिए मंत्री न्यायालय से असफलतापूर्वक आग्रह करता है। यह हो सकता है कि यह विषय ऐसा हो जो क्राउन प्राधिकारियों द्वारा आगे अन्वेषण किए जाने के योग्य हो।"

विगमोर का मत।

8.4. विशेषाधिकार की व्याप्ति का परीक्षण तर्क और नीति के प्रकाश में करने के पश्चात्, विगमोर[2] ने निम्नानुसार उपसंहार किया—

(1) किसी विशिष्ट विभाग के अभिलेखों को, जबकि न्यायालय में साक्ष्य के रूप में उनके लिए सम्यक् रूप से प्रार्थना की गई हो, प्रकट किए जाने को साधारण शब्दों में प्राधिकृत करने के लिए तात्पर्यित किसी भी कार्यपालिक या प्रशासनिक विनियम को शून्य समझा जाना चाहिए।

(2) किसी भी ऐसे **कानून** का, जो साधारण शब्दों में यह घोषित करता हो कि शासकीय अभिलेख गोपनीय हैं, अर्थान्वियन उदारतापूर्वक इस प्रकार किया जाना चाहिए कि न्यायालय में आवश्यकता पड़ने की दशा में प्रकटन के लिए विवक्षित अपवाद उसमें निहित हैं।

(3) ऐसे मामलों में **प्रक्रिया** यह होनी चाहिए: न्यायालय के प्रमुख द्वारा, मुकदमे की उन परिस्थितियों को, जो दस्तावेज की आवश्यकता उत्पन्न करती हैं, कथित करते हुए प्रार्थना पत्र (वास्तविक अभिरक्षक को सपीना संलग्न करते हुए) भेजा जाना चाहिए, और तत्पश्चात् (इंकार किए जाने की दशा में) विभागीय प्रमुख द्वारा, वे परिस्थितियां कथित करते हुए, जो ऐसे इंकार को न्यायोचित ठहराने वाली मानी जा सकती हैं, उत्तर भेजा जाना चाहिए। और तदुपरांत न्यायालय द्वारा विनिर्णय किया जाना चाहिए जो अपीलीय होगा और विशेषाधिकार का अवधारक होगा।

प्रस्तावित संशोधन।

8.5. उपर्युक्त के प्रकाश में, यह आवश्यक होगा कि इन दोनों ही संहिताओं में, उचित स्थान पर यथोचित उपबंध निम्नलिखित रूपविन्यास के आधार पर अन्तःस्थापित किया जाए:—

उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय के विनिश्चय से, जिसके द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 123 या धारा 124 के अधीन किया गया विशेषाधिकार का कोई दावा नामंजूर कर दिया गया हो, व्यथित किसी व्यक्ति को ऐसे विनिश्चय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार होगा और ऐसी अपील इस बात के होते हुए भी फाइल की जा सकेगी कि वह कार्यवाही, जिसमें विनिश्चय सुनाया गया था, उस समय भी लंबित है।

1. कान्वे बनाम रिम्मर (1968) 1 आल० ई० आर० 874 पश्चात्वर्ती स्थितियों के लिए देखिए (1968) 2 आल० ई० आर० 304।
2. विग० एस० 379 एवीडेन्स (1971) पृ० 1165, सरकार में उद्धृत।

अध्याय 9

सांवैधानिक उपबंध

9.1. अभी तक हमने साक्ष्य अधिनियम के अधीन की स्थिति पर विचार किया है। अब संविधान के एक महत्वपूर्ण उपबंध का उल्लेख किया जाना आवश्यक है। संविधान का अनुच्छेद 74 निम्नानुसार है:— अनुच्छेद 74—मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह।

> 74. (2) राष्ट्रपति को उसके कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होगा और राष्ट्रपति ऐसे सलाह के अनुसार कार्य करेगा :
>
> परन्तु राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद् से ऐसी सलाह पर साधारणतया या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।
>
> (2) इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी।

राज्यों के बारे में ऐसा ही उपबंध संविधान के अनुच्छेद 163 में अन्तर्विष्ट है।

9.2. अनुच्छेद 74 जबकि मंत्रियों द्वारा दी गई सलाह की गोपनीयता को परिरक्षित करता है, उसमें संसक्त विषयों, अर्थात् उन कागज-पत्रों के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है जो सलाह के पूर्ववर्ती होते हैं और जिनसे सलाह के लिए कारण गठित करने वाली सामग्री रचित होती है। उच्चतम न्यायालय के हाल ही के एक विनिश्चय में किए गए विवेचन को दृष्टिगत रखते हुए इस बिन्दु पर स्पष्टीकरण आवश्यक हो जाता है।[1] कारणों को गठित करने वाली सामग्री के बारे में संरक्षण की आवश्यकता।

9.3. ऊपर उल्लिखित उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय में, विवाधक प्रश्न (जहां तक कि वह वर्तमान रिपोर्ट से सुसंगत है) यह था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 74(2) के अधीन प्रकटन के विरुद्ध संरक्षण की व्याप्ति क्या है। यह ठहराया गया कि जबकि वे कारण, जो मंत्रि-परिषद् के लिए महत्वपूर्ण थे, निश्चित रूप से सलाह का भाग होंगे, उस सामग्री को, जिस पर तर्क आधारित किए गए हैं और सलाह दी गई है, सलाह का भाग नहीं कहा जा सकता। उस आधार पर, विधि मंत्री, दिल्ली के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के बीच किए गए पत्र व्यवहार को, जिससे उस विशिष्ट मामले में केन्द्रीय सरकार के विनिश्चय का आधार निर्मित करने वाली सामग्री गठित हुई थी, संविधान के अनुच्छेद 74(2) में अधिनियमित अपवर्जनकारी नियम के परे माना गया था। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, निर्णयों में एक में, एक न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के सादृश्य को अपनाया गया है। सुसंगत अंश निम्नानुसार है :— उच्चतम न्यायालय का मामला।

> जो बात हम कह रहे हैं, वह एक न्यायालय द्वारा दिए गए एक निर्णय के सादृश्य द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। निःसंदेह, निर्णय न्यायालय के समक्ष दिए गए साक्ष्य पर आधारित किया जाएगा और वह उसका उल्लेख करेगा और उसकी विवेचना करेगा किन्तु क्या उस आधार पर यह कहा जा सकता है कि साक्ष्य निर्णय का भाग है? निर्णय में केवल विनिश्चय और उसके समर्थन में दिए गए कारण सम्मिलित होंगे और वह साक्ष्य जिस पर तर्क तथा विनिश्चय आधारित हैं, उस निर्णय का भाग नहीं होंगे। इसी प्रकार, उस सामग्री को जिस पर कि मंत्रि-परिषद् द्वारा दी गई सलाह आधारित है, सलाह का भाग नहीं कहा जा सकता और विधि मंत्री, दिल्ली के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत

1. एस० पी० गुप्ता बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1982 उच्चतम न्या० 149 (फरवरी अंक), (1981) अनु० उच्चतम न्या० के मामले 87, 246 से 266 पैरा 59-740।

के मुख्य न्यायमूर्ति के बीच किए गए पत्र-व्यवहार को, जिससे केन्द्रीय सरकार के विनिश्चय का आधार निर्मित करने वाली सामग्री गठित हुई है, तद्नुसार संविधान के अनुच्छेद 74 के खण्ड (2) में अधिनियमित अपवर्जनकारी नियम के परे माना जाना चाहिए।

एक अन्य मत संभाव्य है।

9.4. हमने ऊपर वर्णित उच्चतम न्यायालय के निर्णय में दिए गए तर्क और निष्कर्ष पर सावधानीपूर्वक विचार किया है, तथापि, आदरपूर्वक हम कहना चाहेंगे कि हमें यह प्रतीत होता है कि इस विषय पर एक भिन्न राय कायम करना संभव है। विवादग्रस्त तथ्यों से संबंधित विभिन्न प्रश्नों पर निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, साक्ष्य ही कारण और आधार सुलभ कराता है। **साक्ष्य के कारण ही** विवादग्रस्त विषयों पर तथ्यात्मक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अन्य प्रकार से, इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि मुकदमे में विनिश्चय के लिए, साक्ष्य तथ्यात्मक आधारों या कारणों को संघटित करता है। इसी प्रकार, मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह के संबंध में, वह सामग्री, जो मंत्रियों की सलाह को समर्थित करती है, तथ्यात्मक आधारों या कारणों का द्योतन करती है। अतः हम यह उचित समझते हैं कि सलाह के आधार को सृजित करने वाली सामग्री को सलाह के आधारों या कारणों का भाग माना जाना चाहिए।

सलाह पर पुनर्विचार करने के लिए सामग्री।

9.5. इस विषय पर व्यवहारमूलक दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 74(1) के परन्तु[1] के अधीन, राष्ट्रपति को यह शक्ति है कि वह मंत्रियों से यह अपेक्षा करे कि वे उनके द्वारा दी गई सलाह पर पुनर्विचार करें। अतः राष्ट्रपति अपने इस सांवैधानिक दायित्व का निर्वहन केवल तभी कर सकता है जबकि उसके समक्ष वह सामग्री हो जिन्हें मंत्रियों ने अपनी सलाह देने के लिए महत्वपूर्ण माना था। केवल इसी सामग्री के आधार पर वह, दभी गई सलाह के औचित्य के तथा उस सीमा के बारे में अपना समाधान कर सकता है जिस तक कि वह सलाह सामग्री द्वारा समर्थित है। 'कारण' उन व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रिया को अभिव्यक्त करता है। यह मानसिक प्रक्रिया शून्यता की स्थिति में प्रवर्तित नहीं होती, वह विशिष्ट परिस्थितियों में प्रवर्तित होती है जिससे कि उसे पृथक् नहीं किया जाना चाहिए। यह सामान्य पद्धति है कि पृष्ठभूमि संबंधी जानकारी और दस्तावेजें, जो उन व्यक्तियों के, जिनका कार्य राज्य के महत्वपूर्ण विषयों पर सलाह देना है, मानस में प्रवर्तित होती है, उनकी सलाह में उल्लिखित होती है (यद्यपि वे विस्तार-पूर्वक वर्णित नहीं की जातीं)। सलाह को ऐसी सामग्री से पृथक्कृत रूप में दृष्टिगत करना असम्भव है जो सलाह से सुसंगत है तथा जिसका उल्लेख सलाह मे किया गया है और जिससे सलाह का मूलाधार निर्मित होता है।

संशोधन की आवश्यकता।

9.6. जब इस विषय पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय[2] से इस संबंध में जो शंकाएं उत्पन्न हुए हैं उन्हें दूर किया जाए,। संविधान के अनुच्छेद 74(2) की विवक्षाएं, हमारी राय में, उनके वर्तमान स्वरूप की अपेक्षा अधिक अभिव्यक्त और स्पष्ट रूप से विन्यस्त की जानी चाहिए। ऐसा संशोधन संविधान के सामंजस्यपूर्ण कार्यकरण के हित में और संवैधानिक नीति के, जैसी कि वह हमारे द्वारा समझी जाती है, कार्यान्वयन के हित में स्थिति को अधिक स्पष्टता से पुनः अधिकथित करने की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है।

सदस्यों द्वारा दी गई सलाह में उल्लिखित सामग्री।

9.7. इसी के साथ, हम इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि साक्षिक विशेषाधिकार के किसी भी शीर्ष के बारे में सुसंगत नियम अत्यधिक व्यापकता से विरचित करने में खतरा है। इस ओर वादार्थियों का हित और दूसरी ओर एक निश्चित संवैधानिक नीति बनाए रखने में समाज का हित, दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। इस संबंध में प्रवर्तमान नियमों का उद्देश्य इन दोनों के बीच सुखद सन्तुलन स्थापित करना होना चाहिए। हम समझते हैं कि इस प्रभाव का उपबंध करके कि संविधान के अनुच्छेद 74(2) के अधीन, किसी सामग्री के इस आधार

1. ऊपर का पैरा 9.1।

2. ऊपर का पैरा 9.3।

पर विशेषाधिकार प्राप्त होने के लिए कि उससे कारण गठित होते हैं, यह आवश्यक है कि वह उस अनुच्छेद में वर्णित सलाह में अवश्य उल्लिखित की गई हो, ऐसा सन्तुलन बनाया जा सकता है और अस्पष्टता को एक बड़ी सीमा तक दूर किया जा सकता है तथा विशेषाधिकार की अनाशयित व्यापकता से बचा जा सकता है।

9.8. इस प्रयोजन के लिए, संविधान के सुसंगत उपबंधों को संशोधित करने की आवश्यकता स्वतः स्पष्ट है। इसके लिए कोई यथावत प्रारूप देना मुश्किल है। किन्तु उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थूल रूप से यह प्रस्तावित है कि संविधान के अनुच्छेद 74 में निम्नानुसार एक स्पष्टीकरण जोड़ा जाए—

संविधान के अनुच्छेद 74 और 163 के बारे में सिफारिश।

स्पष्टीकरण—उस सामग्री के संबंध में, जो मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह के लिए आधार या कारण गठित करती है, इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वह ऐसी सलाह का भाग है, जहां कि ऐसी सामग्री का उल्लेख ऐसी सलाह में किया गया हो।

ऐसा ही स्पष्टीकरण (आवश्यक अनुकूलीकरण के साथ) संविधान के अनुच्छेद 163 में जोड़ा जाना चाहिए जो मंत्रियों द्वारा राज्यपाल को दी गई सलाह के संबंध में तदनुरूप उपबंध है।

हम यह सिफारिश करते हैं कि संविधान में उपर्युक्त रूप-विन्यास के आधार पर संशोधन किए जाएं।

अध्याय 10

तुलनात्मक संक्षिप्त सर्वेक्षण

1. सामान्य निरूपण

10.1. अनेक अन्य देशों में, विशेषतः इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा संयुक्त राष्ट्र में विद्यमान स्थिति के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस विषय से संबंधित विधि सामान्यतः कठोरता से नम्यता की ओर, औपचारिक दृष्टिकोण से उदारतावादी दृष्टिकोण की ओर, कार्यपालिका द्वारा नियंत्रण की पूर्ववर्ती स्थिति से विवेकाधिकार अधिकांशतः न्यायपालिका पर छोड़ दिए जाने की पश्चात्वर्ती स्थिति की ओर गतिशील हो रही है। निसंदेह, चरम अवस्थाएं और अभूतपूर्व परिस्थितियां एक या दूसरी दिशा में तीव्र प्रतिक्रिया उद्दीप्त कर सकती हैं। साधारणतः, जैसा कि ऊपर बताया गया है दो व्यापक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं, प्रथमतः, अब जिस सर्वोपरि परीक्षण को मान्यता दी जाती है, वह लोक हित को हानि का है, द्वितीयतः, अब इस बात को मान्यता दी जाती है कि किसी विशिष्ट मामले में विशेषाधिकार की उपलब्धता का अवधारण करने के लिए अंतिम प्राधिकारी न्यायपालिका है कार्यपालिका नहीं। यह प्रवृत्ति इंग्लैंड में **कान्वे** वि० **रिम्मर** के मामले में प्रमुख विनिश्चय से, आस्ट्रेलिया में **सन्के** वि० **भिट्लम** के मामले में प्रमुख विनिश्चय से, कनाड़ा में सुसंगत निर्णयज विधि से और न्यूजीलैंड में भी सुसंगत निर्णयज विधि से स्पष्ट होती है। आस्ट्रेलिया में कुछ क्षेत्रों ने और (फेडरल कोर्ट के संबंध में) कनाडा ने भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है—किन्तु इन्हें विटलन माना जा सकता है।

इंग्लैण्ड और अन्य देशों में परिलक्षित प्रवृत्तियां।

10.2. इंग्लैंड में विद्यमान स्थिति निश्चित रूप से उस प्रवृत्ति को प्रमाणित करती है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

इंग्लैंड।

2. आंग्ल विधि

उद्भव की प्रक्रिया।

10.3. क्राउन के विशेषाधिकार (जिसे अब "राज्य हित" कहा जाता है) विषय पर इंग्लैंड के मामले दीर्घ उद्भव-प्रक्रिया से गुजरे हैं[1]। कान्वे वि० रिम्मर[2] तक की निर्णयज विधि की समीक्षा, साक्ष्य अधिनियम पर विधि आयोग की रिपोर्ट[3] में विस्तृत रूप से की गई है।

कुछ पश्चात्वर्ती मामलों का भी उल्लेख एवीडेन्स ऐक्ट से संबंधित रिपोर्ट[4] में किया गया है।

तत्पश्चात्, इस विषय पर अनेक मामले उद्भूत हुए हैं। उनमें कोई नया सिद्धान्त अधिकथित नहीं किया गया है, किन्तु उनसे प्रकट होता है कि सामान्य प्रवृति कठोरता के प्रति कम और नम्यता की ओर अधिक है।

कुछ मामलों में, विशेषाधिकार के दावे की पुष्टि की गई थी।[5-6] एक मामले में, दावे को नामंजूर कर दिया गया था और दस्तावेज के प्रकटन का आदेश दिया गया था। हाउस आफ लार्ड्स ने इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया कि अप्रकटन में निहित लोक हित का सन्तुलन उस लोक हित के साथ किया जाना चाहिए जो इस बात को सुनिश्चित करने में निहित है कि पक्षकारों के साथ न्याय किया जाता है।[7]

10.4. **नारविच फार्मेकल लिमि० वि० कस्टम्स एण्ड एक्साइज कमिशनर्स**[8] में हाउस आफ लार्ड्स का विनिश्चिय विशेष महत्व का है। अपीलार्थी एक पेटेण्ट के स्वामी और अनुज्ञप्तिधारी थे, आयात के संबंध में कमिशनर्स द्वारा प्रकाशित की गई सूचना से यह प्रकट होता था कि कुछ आयात पेटेण्ट का अतिलंघन करने वाले व्यक्तियों द्वारा किए गए थे। अपीलार्थियों ने यह आदेश चाहा कि कमिश्नर को उन मालों के, जो पेटेण्ट की विषय-वस्तु थे, आयातकों के नाम प्रकट करने चाहिए। यद्यपि हाउस आफ लार्ड्स की यह राय थी कि कमिश्नर ने न्यायालय के आदेश के बिना, प्रकटन करने से ठीक, इंकार किया था, उसने ऐसा करने का आदेश दे दिया। सर्वाधिक सुसंगत कारण यह था कि वे व्यक्ति, जिनके नाम प्रकट किए जाने थे, लगभग निश्चित रूप से दोषकर्ता थे।[9] जो अन्य सुसंगत तथ्य बतलाए गए थे, वे थे—दोषकर्ताओं और कमिश्नर के बीच के संबंध, क्या जानकारी किसी अन्य स्रोत से अभिप्राप्त की जा सकती थी, और क्या ऐसी जानकारी देने से कमिश्नर ऐसी कठिनाई में पड़ सकते थे जिसकी प्रतिपूर्ति खर्चों के लिए आदेश से नहीं हो सकती थी।[10]

10.5. एक अन्य मामले में लार्ड डेवीज के विचार भी प्रसंगानुकूल हैं। किसी विवाद्यक के विचारण के लिए सुसंगत समस्त साक्ष्य का प्रकटन अत्यधिक लोक हित का होने के कारण, अवधार्य प्रश्न यह है कि क्या यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि किसी विशिष्ट मामले में लोक हित का संरक्षण, किसी साक्ष्य को, उसकी सुसंगतता के बावजूद भी, अपवर्जित करके अधिक अच्छे ढंग से किया जा सकता है। यदि, सन्तुलन करने के पश्चात मामला शंकास्पद रहता है तो प्रकटन का आदेश दिया जाना चाहिए।[11]

---

1. तुलना कीजिए—क्रास, एवीडेन्स (1979), पृ० 306, 307।
2. **कान्वे** बनाम **रिम्मर** (1968) 1 आल० ई० आर० 874 (एच० एल०)।
3. भारत का विधि आयोग, 69वीं रिपोर्ट (साक्ष्य अधिनियम)।
4. संक्षेप सर्वेक्षण के लिए, देखिए डी०सी० एम०, यार्डली, 'एक्जीक्यूटिव प्रिविलेज" (1974) न्यू ला जनरल, 794, 796।
5. **आर०** बनाम **लीवीज जे० जे० एक्स-पार्टी होम सेक्रेटरी,** (1982) डब्ल्यू० एल० आर० 279 (एच० एल०)।
6. **अलफ्रेड क्राम्पटन एम्यूजमेण्ट मशीन्स लिमि०,** (1973) आल० ई० आर० 169 (एच० एल०)।
7. **नारविच फार्मेकल कम्पनी लिमि०** बनाम **कमिशनर्स आफ कस्टम्स एण्ड एक्साइज,** (1973) 2 आल० ई० आर० 943 (एच० एल०)।
8. **नारविच फार्मेकल कंम्पनी लिमि०** बनाम **कस्टम्स एण्ड एक्साइज कमिश्नर,** (1973) 2 आल० ई० आर० (एच० एल०)।
9. केवल निर्दोष-आयातक ही आयातक हो सकते थे।
10. अंतिम दो मामलों पर, देखिए सी० एफ० टेपर की टीप, 37 एच० एल० आर० 92।
11. डी० वी० एन० एस० पी० सी० पी० (1978) ए० सी० 171, 174, 246 (1977) 1 आल० ई० आर० 589।

10.6. इंग्लैंड में विभिन्न न्यायिक विनिश्चयों से उद्भूत होने वाले सिद्धान्त को—एवीडेन्स की एक प्रमुख अंग्रेजी पुस्तक[1] में इस प्रकार वर्णित किया गया है :— सिद्धान्त।

"सुसंगत साक्ष्य को लोक हित के आधार पर अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए जबकि वह लोक हित की कुछ बातों से, जिन्हें न्यायालय को तथ्यों के पूर्ण प्रकटन से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता हो, संबंधित हो और जबकि वह मुकदमे से संबद्ध प्रकीर्ण बातों से संबंधित हो।"

10.7. लोक हित से विनिर्दिष्टत: संबंधित नियम को सरलता से इस प्रकार कथित किया गया है[2] :—

"सुसंगत साक्ष्य को अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए यदि उसका ग्रहण किया जाना लोक हित के प्रतिकूल हो, किन्तु "राज्य हित" एक अस्पष्ट पद है और सुसंगत साक्ष्य ग्रहण किए जाने के प्रति आक्षेप किस सीमा तक किया गया है इसे अभिनिश्चित करने के लिए विनिश्चित मामलों को देखना आवश्यक है।"

कुछ दृष्टान्तात्मक मामलों का उल्लेख किया जा सकता है।

10.8. पाठ्य पुस्तकों में आंग्ल विधि का विवेचन साधारणत: विभिन्न प्रवर्गों, जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा, लोक सेवा और इसी प्रकार के अन्य प्रवर्गों के अधीन किया गया है। राष्ट्रीय सुरक्षा अन्तर्ग्रस्त करने वाले एक मामले में[3] वादियों ने, बोर्ड आफ एडमिरल्टी के निदेशों के अधीन कार्य करते हुए, अपने एजेण्ट को पत्र पेश करने से इस आधार पर इंकार कर दिया कि उसमें प्रथम विश्व युद्ध के मिडिल ईस्टर्न केम्पेन के संबंध में सरकार के प्लान अन्तर्विष्ट थे। वस्तुत: यह जानकारी प्रतिवादियों को बोर्ड आफ एडमिरल्टी द्वारा पूर्ण गोपनीयता की सील के अधीन दी गई थी किन्तु जैसा कि स्विनफेन-एल्डी, एल० जे ने व्यक्त किया— राष्ट्रीय सुरक्षा।

इस नियम का आधार यह है कि वह जानकारी लोक हितों को हानि पहुंचाए बिना प्रकट नहीं की जा सकती, न कि यह कि दस्तावेजें गोपनीय या शासकीय हैं जो एकल रूप से उन्हें पेश न करने के लिए कोई कारण नहीं है; साधारण लोक हित वादी के हितों से ऊपर है।

जहां राज्य की सुरक्षा अन्तर्ग्रस्त है, वहां विशेषाधिकार का दावा (यदि उसकी पुष्टि यथोचित साक्ष्य द्वारा हो जाती है), अधिक आसानी से स्वीकार किया जा सकता है।[4]

10.9. राष्ट्रीय सुरक्षा से भिन्न अनेक राष्ट्रीय हितों का संरक्षण विचाराधीन नियम द्वारा किया गया है।[5] एक मामले का उल्लेख यहां किया जा सकता है।[6] कस्टम्स और एक्साइज कमिश्नरों तथा उनके कर्मचारीवृन्द के बीच के आन्तरिक पत्र-व्यवहार और अन्य व्यक्तियों के साथ हुए कमिश्नरों के पत्र-व्यवहार के संबंध में, जो उस आधार के बारे में, जिस पर कम्पनी द्वारा क्रय कर देय होना चाहिए, राय बनाने की अपनी कानूनी बाध्यता को पूरा करने के लिए कमिश्नरों को समर्थ बनाने के लिए अस्तित्व में लाए गए थे, यह ठहराया गया था कि वे उन्हें पेश किए जाने से लोक हित में विधारित करने के दावे के उचित विषय थे। अन्य राष्ट्रीय हित।

10.10. विशेषाधिकार के दावे को उन परिस्थितियों में न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न किया गया है जहां एक लोक सेवक द्वारा दूसरे लोक सेवक को अपने कर्तव्य के अनुक्रम में कोई रिपोर्ट दी गयी है। यहां यह तर्क यह है कि रिपोर्ट को गोपनीय माना जाना चाहिए और लोक सेवा में संसूचनाएं।

1. क्रास, एवीडेन्स (1979), पृ० 304।
2. क्रास, एवीडेन्स, (1979), पृ० 306।
3. एशियाटिक पेट्रोलियम कंपनी लिमि० बनाम एंग्लो परशियन आइल कम्पनी लिमिटेड (1916) 1 के० बी० 822, 830।
4. तुलना कीजिए—डन्कन बनाम कैम्मेल लायर्ड एण्ड कंपनी (1942) 1 आल० ई० आर० 857।
5. क्रास, एवीडेन्स, (1979), पृ० 307।
6. अल्फ्रेड क्राम्पटन एम्यूजमेण्ट मशीन्स बनाम कस्टम्स कमि०, (1973) 2 आल० ई० आर० 1169।

रिपोर्ट देने वाले पदधारियों ने यह आशा की हो कि उन्हें गोपनीय समझा जाए। यदि गोपनीयता नष्ट हो जाती है तो सिविल सर्वेण्ट (यह कहा गया है) पूर्ण और स्पष्ट रिपोर्ट लिखने के लिए तैयार नहीं होगा। इस प्रवर्ग को सुविधापूर्वक उस दावे के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है जो "लोक सेवा" शीर्ष के अधीन उद्भूत होता है। तथापि, यह प्रतीत होगा कि इंग्लैण्ड में वर्तमान समय में इस शीर्ष के अधीन विशेषाधिकार को पृथक् से मान्यता नहीं दी जाती। अंग्रेज लेखकों ने इस तर्क की कि गोपनीय रिपोर्ट स्पष्टवादिता के साथ नहीं की जाएगी (यदि लोक संवीक्षा की अधिसंभाव्यता हो) अनेक बार आलोचना की है।[1] बहुत समय पूर्व, गार्नर ने यह सुझाव दिया था[2] कि वास्तव में सूक्ष्म परीक्षण करने पर यह तर्क ठहर नहीं पाता क्योंकि किसी सिविल सेवक को ऐसी रिपोर्ट, जिसकी आलोचना की जा सकती हो या ऐसी रिपोर्ट, जिसके बारे में वह यह नहीं चाहता कि उसकी परीक्षा (राज्य सुरक्षा के आधारों पर के सिवाय) न्यायालय में की जाए, लिखने के लिए तैयार नहीं होना चाहिए।

हाउस आफ लार्ड्स ने, इस तर्क पर विचार करते समय कि यदि विशेषाधिकार को मान्यता नहीं दी जाती तो सिविल सर्वेण्ट्स के बीच पत्र-व्यवहार की निष्पक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, **कान्वे के मामले**[3] में निम्नानुसार विचार व्यक्त किए :—

> यह आश्चर्यजनक है कि केवल सिविल सर्वेण्ट्स के बारे में यह माना जाता है कि वे आत्यंतिक विशेषाधिकार के संरक्षण के बिना, जो उनके अन्य सहयोगी जनों को उपलब्ध नहीं होता, कर्तव्य के दौरान अपने कथनों में निष्पक्ष रहने में असमर्थ रहते हैं।

अवशिष्ट प्रवर्ग।

10.11. कुछ अन्य अवशिष्ट प्रवर्ग भी हैं जिनमें विशेषाधिकार का दावा किया जाता है। यह "लोक हित" के अधीन अवशिष्ट प्रवर्ग है। यह प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में इस प्रवर्ग को "विनिर्दिष्ट अपराधों का निवारण" और "क्राउन के सशस्त्र बलों का मनोबल बनाए रखना" जैसे विनिर्दिष्ट शीर्षों के सन्दर्भ में परिभाषित किया गया है। तथापि, इन विनिर्दिष्ट शीर्षों को भी न्यायिक[4] एवं अन्य[5] आलोचना से बख्शा नहीं गया है। क्रास[6] के अनुसार—

> यह विश्वास करना कठिन है कि (उनके द्वारा) "अन्य राष्ट्रीय हित" शीर्ष के अधीन उल्लिखित सभी मामलों का अनुसरण वर्तमान में किया जाएगा।

क्रास, सेण्ट मेरीलीबोन के लार्ड हेलशम के निम्नलिखित विचारों को उद्धृत करते हैं—[7]

> लोक हित के प्रवर्ग समाप्त नहीं हुए हैं और जैसे-जैसे सामाजिक स्थितियों तथा सामाजिक विधानों का विकास होता है, उनमें समय-समय पर, या तो निर्बन्धन द्वारा या वृद्धि द्वारा, परिवर्तन होते रहना चाहिए।

मंत्रि-परिषद् के कार्यवृत्त।

10.12. मंत्रि-परिषद् के कार्यवृत्त, राजदूतों के साथ पत्र-व्यवहार और विभाग के प्रमुखों के बीच पत्र-व्यवहार के कुछ मामलों के संबंध में, **कान्वे वि० रिम्मर**[8] के मामलों में दिए गए व्याख्यानों में यह माना गया था कि कोई भी न्यायालय ऐसी दस्तावेजें पेश किए जाने का आदेश नहीं देगा।

---

1. उदाहरणार्थ, इनग्रिस बेल, (1957) पब्लिक ला।
2. गार्नर, एडमिनिस्ट्रेटिव ला (1967), पृ० 252—पश्चात्वर्ती संस्करण में मत की पुनरावृत्ति की गई।
3. **कान्वे बनाम रिम्मर** (1968) 1 आल० ई० आर० 874, 919, 967 (एच० एल०)।
4. **ग्रासवेनोर होटल** (संबंधित) (1963) 3 आल०ई०आर० 426, अपील में (1964) 1 आल० ई० आर० 92।
5. (क) 79 एल० क्यू० आर० 37, 153, 487;
   (ख) 80 एल० क्यू० आर० 24, 158;
   (ग) (1963) पब्लिक ला 405।
6. क्रास, एवीडेन्स (1979), पृ० 309।
7. डी० बनाम एन० एस० पी० सी० सी० (1978) ए० सी० 71।
8. **कान्वे बनाम रिम्मर** (1968) आल० ई० आर० 910, 971।

10.13. पुलिस इत्तिला के स्रोत साक्ष्य की न्यायिक रूप से मान्य श्रेणी हैं, जो लोक हित के आधार पर अपवर्जित हैं जब तक कि उनका पेश किया जाना, किसी दाण्डिक विचारण में निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए आवश्यक न हो।[1] पुलिस को इत्तिला।

10.14. जहां तक आपराधिक मामलों का संबंध है, यह कहा जाता है कि इंग्लैंड में राज्य हित के आधार पर विशेषाधिकार का दावा करने की प्रथा नहीं है।[2] आपराधिक मामले।

10.15. इंग्लैंड में ये सुझाव दिए गए हैं कि लोक हित के उन प्रकारों का, जिन पर विचार किया जा सकता है, विशिष्टीकरण करने के लिए विधायी कार्रवाई करनी चाहिए।[3] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में अभी तक कोई ऐसा निर्बन्धनात्मक विधान अधिनियमित नहीं किया गया है। लोक हित—प्रवर्गीकरण के लिए सुझाव।

10.16. कुछ पूर्ववर्ती आंग्ल मामलों के अनुसार, किसी दस्तावेज के प्रकटन को लोक हित में या तो उसकी अन्तर्वस्तु के कारण या अन्यथा विधारित किया जा सकता है क्योंकि वह उस वर्ग के अन्तर्गत आता है जिसे लोक नीति के आधारों पर प्रकट किए जाने से एक वर्ग के रूप में विधारित किया जाना चाहिए। पेश किए जाने का पश्चात्वर्ती आधार सामान्यतया तब लिया जाता है जब राष्ट्रीय सुरक्षा से भिन्न कोई आधार अन्तर्ग्रस्त हो।[4] वर्ग-अन्तर्वस्तु का अन्तर।

तथापि, जहां तक राज्य के कार्यकलापों या लोक हित के आधार पर दावा किए गए विशेषाधिकार का संबंध है, आधुनिक समय में प्रवृत्ति यह है कि एक समरूप परीक्षण लागू किया जाए क्योंकि नियामक आधार सरल (यद्यपि अमूर्त) है और वह है लोक हित को हानि। सुसंगत साक्ष्य अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए यदि उसका ग्रहण किया जाना राज्य हित के प्रतिकूल हो।[5]

10.17. संभाव्यतः दस्तावेजों का कोई ऐसा प्रवर्ग नहीं है जिसके अन्तर्गत आने वाली दस्तावेजों को प्रकट किए जाने का आदेश न्यायालय कभी भी नहीं देंगे।[6-7] इंग्लैंड में प्रवर्गीकरण को समर्थन प्राप्त नहीं है।

यह हो सकता है कि व्यवहार में, यह तथ्य कि दस्तावेज किसी विशिष्ट विषय से संबंधित है, न्यायालय को इस बात के लिए प्रेरित करे कि वह उस दस्तावेज को नेमी स्वरूप के अन्य दस्तावेजों की अपेक्षा अधिक महत्व दे। इस प्रकार, दस्तावेज की प्रकृति इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एक सुसंगत तथ्य है कि "लोक हित को हानि" के आधार पर उसे किस सीमा तक संरक्षण मिलना चाहिए। किन्तु संक्षिप्त शब्दों में नियम का सूत्रीकरण इस पहलू से प्रभावित नहीं होता, तथापि वह उस बात को, जो साधारण नियम में संक्षिप्त शब्दों में उपदर्शित है, और अधिक निश्चित और दृश्यमान रूप में स्पष्ट करने में सहायक हो सकता है। यदि किसी को रिपोर्टेड केसेस का डाइजेस्ट तैयार करना हो तो ऐसा वर्गीकरण वह नाम उपलब्ध कराने में सहायक होगा जिसके अधीन विवेचन को व्यवस्थित किया जाना हो। वर्गीकरण से इसके अतिरिक्त, विधिक प्रवर्गीकरण करने का कोई आधार सुलभ नहीं होगा।

10.18. प्रक्रियात्मक पहलू का जहां तक संबंध है, **कान्वे वि० रिम्मर**[8] में यह विशिष्ट और निश्चित रूप से अधिकथित किया गया था कि जब कभी किसी सुसंगत दस्तावेज के पेश किए जाने के बारे में कोई आक्षेप किया जाता है तो यह विनिश्चित करना न्यायालय का कार्य होगा कि क्या उस आक्षेप को स्वीकार किया जाए। यह भी ठहराया गया था कि प्रक्रियात्मक पहलू।

1. **रोजर्स** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार दि होम डिपार्टमेंट** (1972) 2 आल० ई० आर० 1057।
2. क्रास, एवीडेन्स (1979), पृ० 310।
3. क्लार्क, दि लास्ट वर्ड आन दि लास्ट वर्ड, (1969), 32 माडर्न ला रि० 142, 148।
4. क्रास, एवीडेन्स के विषय में (1979), पृ० 307।
5. क्रास, एवीडेन्स के विषय में (1979), पृ० 306।
6. **साइन्स रिसर्च काउन्सिल**, वि० **नासे**, (1979) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 784 में लार्ड फ्रेजर।
7. नीचे का पैरा 10 भी देखिए।
8. **कान्वे** बनाम **रिम्मर** (1958) ए० सी० 919, 971 (लार्ड मारिस आफ बार्थ-याई-जेस्ट)।

न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति में, पेश किए जाने के संबंध में किए गए आक्षेप का स्पष्टीकरण या विशदीकरण करने की मांग करने की शक्ति भी सम्मिलित होनी चाहिए, तथापि न्यायालय इस बात की सावधानी बरतेगा कि वह (उस प्रक्रम पर) ऐसी अपेक्षा अधिरोपित न करे जिसकी पूर्ति उन बातों को ही प्रकट करके ही की जा सकती है जिनसे वह आक्षेप संबंधित है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय की शक्ति के अन्तर्गत दस्तावेजों की परीक्षा प्राइवेट तौर पर करने की शक्ति भी होनी चाहिए, तथापि व्यवहार में उस शक्ति का प्रयोग कम ही किया जाना चाहिए। अन्ततः, जैसा कि लार्ड मारिस आफ बर्थ वाई-जेस्ट ने व्यक्त किया है—"मैं सिद्धान्ततः उन तथ्यों में कोई अन्तर नहीं पाता जो उन बातों को जिन्हें अन्तर्वस्तु मामले कहा गया है, तथा वर्गीय मामलों को शासित करते हैं।"[1]

पक्षकारों को विन्यस्त करना न कि सामग्री को।

10.19. इंग्लैंड में उन मामलों में, जिनमें क्राउन एक पक्षकार है तथा उन मामलों में, जिनमें कार्यवाहियां प्राइवेट नागरिकों या निगमों के बीच हैं, कोई अन्तर नहीं किया जाता।[2]

3. आस्ट्रेलिया और कनाडा

आस्ट्रेलिया और कनाडा।

10.20. आस्ट्रेलिया में, हाल ही के वर्षों में दो महत्वपूर्ण विकास हुए हैं। **सन्के** वि० **व्हिटलम**[3] में हाईकोर्ट के महत्वपूर्ण विनिश्चय में विनिर्दिष्टतः यह ठहराया गया है कि यह विनिश्चय करना न्यायालय का उत्तरदायित्व है कि क्या किसी दस्तावेज को लोक हित में प्रकटन से संरक्षित किया जाना चाहिए। न्यायालय को अप्रकटन में निहित लोक हित का संतुलन उचित न्याय में निहित लोक हित के साथ करना चाहिए। अन्तर्ग्रस्त लोक हित की प्रकृति प्रत्येक मामले में पृथक् पृथक् होगी, अतः सरकार के उच्च स्तरों से संबंधित किसी वर्ग की दस्तावेजों को दिया गया संरक्षण आत्यंतिक नहीं हो सकता और न ही सदैव उसका उपयोग किया जा सकता है। ऊपर वर्णित व्यवस्था के अनुसार, यह तथ्य कि कोई दस्तावेज, दस्तावेजों के ऐसे वर्ग की है जिसे मामूली तौर पर लोक हित में प्रकटन से संरक्षित समझा जाएगा, आवश्यक रूप से विवाद्य प्रश्न का अवधारक नहीं है। दस्तावेज का किसी वर्ग से संबंधित होना, लोक हित का सन्तुलन करने के लिए सुसंगत हो सकता है।

10.21. ऊपर वर्णित मामला आस्ट्रेलिया के भूतपूर्व प्रधान मंत्री और लेबर पार्टी के दो सदस्यों के विरुद्ध लाया गया प्राईवेट अभियोजन था, जिसमें तथाकथित "लोन अफेयर्स" से उद्भूत होने वाले षड्यंत्र का अभिकथन किया गया था। समनित दस्तावेजों में सरकारी नीति संबंधी विषयों से संबंधित मंत्रि-परिषद् के कागज-पत्र तथा मंत्रियों और सरकार के वरिष्ठ पदधारियों के बीच के पत्र-व्यवहार समाविष्ट करने वाली दस्तावेजें[4] सम्मिलित थीं। कुछ दस्तावेजें पहले ही **बुलेटिन** मेगजीन में और एक पुस्तक में भी प्रकाशित हो चुके थे, कुछ "लोन अफेयर" पर बहस के दौरान पार्लियामेंट के पटल पर भी रखे गए थे। उस मजिस्ट्रेट ने, जिसके समक्ष विशेषाधिकार का दावा किया गया था, कमिश्नरों द्वारा किया गया विशेषाधिकार उन सब दस्तावेजों के लिए मान्य कर लिया जिनके बारे में दावा किया गया था। इन्फार्मेण्ट द्वारा मेन्डामस की रिट के लिए और मूलतः समनित दस्तावेजों के पेश किए जाने की घोषणा के लिए प्रार्थना की जाने पर, वह मामला उच्च न्यायालय के समक्ष आया। उच्च न्यायालय ने यह घोषित किया कि (एक अपवाद के साथ) सभी दस्तावेजें पेश की जानी चाहिए। जहां तक अपवादित दस्तावेज का संबंध था, उक्त दस्तावेज का एक भाग भी उपलब्ध कराया जाना था। उच्च न्यायालय ने स्पष्टतः यह अधिकथित किया गया कि दस्तावेजों का कोई विशिष्ट वर्ग—यहां तक कि मंत्रि-परिषद् के कागज-पत्र को भी छूट प्राप्त नहीं था। इस विनिश्चय का मर्म स्टीफेन, न्या०[5] के कथन में पाया जाता है—

1. तुलना कीजिए—ऊपर का पैरा 10.16।
2. क्रास, एवीडेन्स (1979), पृ० 389।
3. **सन्के** बनाम **व्हिटलम** (1978) ए०एल०आर० 505, 535-546 (हाईकोर्ट आफ आस्ट्रेलिया)।
4. डेनिस पियर्स,—'आफ मिनिस्टर्स रेफरीज एण्ड इन्फार्मर्स—साक्ष्य लोकहित में अग्राह्य है' (1980), 54, आस्ट्रे० एल० जे० 127, 128।
5. **सन्के बनाम व्हिटलम** (1978) 54 ए० एल० जे० आर० 11, 31 (हाईकोर्ट आफ आस्ट्रेलिया)।

क्राउन के विशेषाधिकार के संबंध में न्यायाधीशकृत-विधि कोई संहिता नहीं है, वह दस्तावेजों का कोई ऐसा अपरिवर्तनीय वर्ग तैयार नहीं करती जिसे तथाकथित आत्यंतिक विशेषाधिकार प्रदान किया जाना हो। इसके विपरीत, उसका सार लोक हित के प्रतिस्पर्धी पहलुओं के अस्तित्व को, उनके अपने-अपने महत्व को मान्यता देना है और इसलिए पारिणामिक सन्तुलन एक मामले से दूसरे में भिन्न होता है।

आस्ट्रेलिया में विधायी प्रक्रिया।

10.22. आस्ट्रेलिया में न्यायिक पार्श्व में यह प्रथम विकास है। किन्तु इसका प्रतिकार आस्ट्रेलिया में हुए एक दूसरे उल्लेखनीय विकास द्वारा किया जाता है, जो **सन्के** वि० **ह्विटलम** में उपर्युक्त विनिश्चय की विधायी प्रतिक्रिया है। इसका उदाहरण एविडेन्स अमेण्डमेन्ट ऐक्ट, 1982 है, जो आस्ट्रेलिया के उत्तरीय राज्यक्षेत्र के लिए पारित किया गया है। यह अधिनियम अटर्नी जनरल को उस दशा में विशेषाधिकार का दावा करने के लिए अनुज्ञात करता है जबकि वह यह समझता है कि लोक हित में कुछ दस्तावेजों या संसूचनाओं को पेश नहीं किया जाना चाहिए। यदि ऐसा दावा किया जाता है, तो न्यायालय उन दस्तावेजों या संसूचनाओं को साक्ष्य में ग्रहण नहीं कर सकता। यह अधिनियम उन दस्तावेजों से, जिनमें मंत्री, मंत्री-परिषद् या कार्यपालिका परिषद् अन्तर्ग्रस्त है, तथा फेडरल और स्टेट मंत्रियों के बीच के पत्र-व्यवहार से संबंधित है।

विधान मण्डल में बिल पर बहस के दौरान प्रतिपक्ष द्वारा उपर्युक्त विधान की तीव्र आलोचना की गई।[1]

10.23. प्रसंगतः, यह उल्लेख किया जा सकता है कि **सन्के** वि० **ह्विटलम** में आस्ट्रेलिया का निर्णय हाउस आफ लार्ड्स के विनिश्चय[2] में उद्धृत किया गया था जिसमें उसके व्यापक दृष्टिकोण से स्पष्टतः सहमति व्यक्त की गई थी।

न्यू साउथ वेल्स संशोधन।

10.24. यह प्रतीत होता है कि सन्के वि० ह्विटलम के विनिश्चय के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में न्यू साउथ वेल्स राज्य सरकार ने भी एविडेन्स ऐक्ट को, धारा 61(1) में निम्नानुसार उपबंध करने के लिए संशोधित किया :—

"61.(1) जब अटर्नी जनरल लिखित में यह प्रमाणित करता है कि उसकी राय में—

(क) प्रमाणपत्र में वर्णित कोई संसूचना, या इस प्रकार वर्णित किसी बात से संबंधित कोई संसूचना, सरकारी संसूचना है और वह गोपनीय है, और

(ख) प्रमाणपत्र में वर्णित किन्हीं विधिक कार्यवाहियों में ऐसी संसूचना का प्रकटन लोक हित में नहीं है,

तो वह संसूचना उन विधिक कार्यवाहियों में या उनके संबंध में प्रकट नहीं की जाएगी, य उन कार्यवाहियों में साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होगी।"

कनाडा।

10.25. कनाडा में जो नियम (उस विनिर्दिष्ट कानून के अलावा जिसका उल्लेख अभी किया जाएगा)[3] निर्णय विधि[4] द्वारा अधिकथित किया गया है, उदार नियम है। कनाडा के अधिकांश न्यायालयों ने, **कान्वे** वि० **रिम्मर** में दिए गए आंग्ल विनिश्चय का राज्य हित के संबंध में अनुसरण किया है, हालांकि कभी-कभी भिन्न दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। कनाडा के न्यायिक विनिश्चयों का सर्वेक्षण करने से यह प्रतीत होगा कि कम से कम उन

1. आस्ट्रेलिया के उत्तरीय राज्यक्षेत्र के लिए एवीडेन्स अमेण्डमेन्ट एक्ट, 1982 देखिए (जुलाई) (1982) 8 कामनवेल्थ लीगल बुलेटिन, 890।
2. **बर्मा आयल बनाम बैंक आफ इंग्लैंड,** (1979) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 722, 760 (लार्ड स्कारमैन)।
3. नीचे का पैरा 10.26।
4. देखिए स्टेन्ले शिफ, एवीडेन्स इन दि लिटिगेशन प्रोसेस (1978) खण्ड 2, पृ० 1069 में उल्लिखित मामले।

मामलों में, जिनमें राष्ट्रीय सुरक्षा या आन्तरिक संबंधों या केबीनेट कान्फीडेन्स का प्रश्न नहीं है, राज्य हित के आधार पर विशेषाधिकार का दावा कनाडा में न्यायालयों द्वारा पुनर्विलोकनीय होगा।[1-2]

कनाडा में विधायी प्रतिक्रिया—फेडरल कोर्ट ऐक्ट।

10.26. तथापि, एक ऐसा विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध—फेडरल कोर्ट ऐक्ट, 1970 की धारा 41 (जो एक ऐसा अधिनियम है जो मुख्यतः कनाडा के नए फेडरल कोर्ट की संरचना, अधिकारिता और प्रक्रिया से संबंधित है)—जिसमें कुछ भिन्न दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह धारा निम्नानुसार है[3]—

41.(1) किसी अन्य अधिनियम के उपबन्धों और उपधारा (2) के अध्यधीन रहते हुए, जब क्राउन का मंत्री किसी न्यायालय को शपथपत्र द्वारा यह प्रमाणित करता है कि कोई दस्तावेज ऐसे वर्ग का है या यह कि उसमें ऐसी जानकारी अन्तर्विष्ट है जिसे पेश या प्रकट किए जाने से शपथपत्र में विनिर्दिष्ट लोक हित के आधार पर विधारित किया जाना चाहिए, तो न्यायालय उस दस्तावेज की परीक्षा कर सकेगा और उसे, ऐसे निर्बन्धनों या शर्तों के अध्यधीन रहते हुए, जैसी कि वह उचित समझे, पक्षकारों को पेश या प्रकट किए जाने का आदेश दे सकेगा, यदि वह उस मामले की परिस्थितियों में इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उचित न्याय प्रशासन में निहित लोक हित का महत्व शपथपत्र में विनिर्दिष्ट लोक हित से अधिक है।

(2) जब क्राउन का कोई मंत्री किसी न्यायालय को शपथपत्र द्वारा यह प्रमाणित करता है कि किसी दस्तावेज या उसकी अन्तर्वस्तु का पेश या प्रकट किया जाना अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा या सुरक्षा के लिए, या फेडरल-प्रविन्शियल संबंधों के लिए हानिकर होगा या यह कि उससे कनाडा की क्वीन्स प्रिवी काउन्सिल का कान्फीडेन्स प्रकट हो जाएगा, तो प्रकटन और पेशकरण, न्यायालय द्वारा दस्तावेज की परीक्षा किए बिना ही, नामंजूर कर दिया जाएगा।

4. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में स्थिति—1953 का विनिश्चय।

10.27. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सरकार के विशेषाधिकार पर निर्णयज विधि इतनी समृद्ध और अधिक नहीं रही है जितनी कि कामनवेल्थ क्षेत्राधिकारों में। किन्तु कम से कम दो विनिश्चय उल्लेखनीय हैं। पहला है **यूनाइटेड स्टेट्स** वि० **रेनोल्डस**[4] जिसमें यह प्रतिपादित किया गया कि न्यायपालिका ही यह विनिश्चित करती है कि क्या किसी विशेष अवसर पर दावा किया गया विशेषाधिकार न्यायोचित है अथवा नहीं।

1974 का विनिश्चय।

10.28. इस प्रवृत्ति की पुष्टि **यूनाइटेड स्टेटस** वि० **निक्सन**[5] के प्रसिद्ध मामले में की गयी है जिससे यह प्रकट होता है कि "राज्य" की गुप्त बातों और "शासकीय जानकारी" के क्षेत्र में विशेषाधिकार विशेषित है और इस न्यायिक निर्धारण के समक्ष झुक जाता है कि किसी विशिष्ट मामले में उसके प्रकटन से अधिक महत्वपूर्ण हितों की रक्षा होगी। कुछ हद तक, **यूनाइटेड स्टेट्स** वि० **निक्सन** के विनिश्चय के बारे में यह माना जा सकता है कि वह **यू० एस०** वि० **रेनाल्ड्स**[6] में दिए गए पूर्ववर्ती विनिश्चय की अपेक्षा अधिक उदारतान्मुख है क्योंकि परस्पर विरोधी तथ्यों के न्यायिक मूल्यांकन को अब गौरव का स्थान प्राप्त है।

1. बर्शनेल, "क्राउन प्रिविलेज" (1973) 51 कनाडियन बार रिव० 551।
2. नोट, "एक्जीक्यूटिव प्रिविलेज" (1975) 33 यूनी० आफ टोरन्टो फैकल्टी ला रिव० 181।
3. धारा 41, फेडरल कोर्ट ऐक्ट, 1970 (कनाडा)।
4. यू० एस० बनाम रेनाल्ड्स (1954) 345 यू० एस० 1।
5. यू० एस० बनाम निक्सन (1974) 418, यू० एस० 683।
6. यू० एस० बनाम रेनाल्ड्स (1954) 345, यू० एस० 1।

10.29. उपर्युक्त विनिश्चय पर बहुत अधिक साहित्य उपलब्ध है। मुकदमे में अन्तर्ग्रस्त समस्त कागज-पत्र सुविधापूर्वक एक प्रकाशित पुस्तक में निकाले लाए हैं।[1] निर्णय के शीघ्र पश्चात् अनेक लेख प्रकाशित हुए जिनमें से दो का (जो एक साथ मिलकर) विनिश्चय के समस्त पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं[2,3] उल्लेख करना पर्याप्त है। ड्राफ्ट फेडरल रूल्स।

10.30. निसंदेह, **यू० एस० वि० निक्सन** में के निर्णय में कुछ इतरोक्तियां (राष्ट्रीय सुरक्षा आदि से संबंधित उक्तियां) यह धारणा उत्पन्न करती हैं कि न्यायालय **यू० एस० वि० रेनाल्ड्स** में प्रदर्शित अपने पूर्ववर्ती उदार दृष्टिकोण से पीछे हट जाएगा। तथापि, वह स्वतः कुछ विवादास्पद विषय है। स्थिति की दुर्बोधता।

कदाचित, निर्णयज विधि की अल्पता से उद्भूत होने वाली स्थिति की दुर्बोधता के कारण, अमेरिकन संवैधानिक विधि के एक प्रख्यात लेखक[4] ने इस बात पर कुछ निश्चित नियम अधिकथित करने पर जोर दिया है।

10.31. **यू० एस० वि० निक्सन** का विनिश्चय सुनाया जाने के पूर्व, 1972 में साक्ष्य के प्रारूप नियम[5] बनाए गए थे, और यह वांछनीय है कि उसमें प्रस्तावित सुसंगत नियम उद्धृत किए जाए जिससे कि उस समय का विचार ज्ञात हो सके। उन नियमों में, सरकार के विशेषाधिकार से संबंधित नियम इस प्रकार बनाया गया था—— ड्राफ्ट फेडरल रूल्स आफ एवीडेन्स।

> "सरकार को यह विशेषाधिकार है कि वह इस खतरे की युक्तियुक्त संभाव्यता दर्शा कर कि साक्ष्य से राज्य की गुप्त बात या इस नियम में यथापरिभाषित शासकीय जानकारी प्रकट होगी, साक्ष्य देने से इन्कार कर दे और साक्ष्य देने से किसी व्यक्ति को रोक दे।"

10.32. उसी सूत्रीकरण में, दस्तावेजों को दो प्रवर्गों में विभाजित किया गया था, अर्थात्:—— "राज्य की गुप्त बातें" और "शासकीय जानकारी"। "राज्य की गुप्त बात" सरकार की वह गुप्त बात है जो राष्ट्रीय प्रतिरक्षा या यूनाइटेड स्टेट्स के आन्तरिक संबंधों के संबंधित हो। "शासकीय जानकारी" सरकार के विभाग या अभिकरण की अभिरक्षा या नियंत्रण में की वह जानकारी है जिसके प्रकटन के बारे में यह दर्शाया गया है कि वह लोक हित के प्रतिकूल है। यद्यपि "राज्य की गुप्त बातों" का प्रवर्ग (राष्ट्रीय प्रतिरक्षा या आन्तरिक संबंध), जो इस सूत्रीकरण में पृथक् से उल्लिखित किया गया है, संभवतः **यू० एस० वि० रेनाल्ड्स** के विनिश्चय से लिया गया था, यह उल्लेख किया जा सकता है कि उस विनिश्चय के अधीन, न्यायाधीश को प्रत्येक मामले में यह अवधारित करना चाहिए कि क्या परिस्थितियां विशेषाधिकार के दावे के लिए उचित हैं। इसके अतिरिक्त, (जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है), **यू० एस० वि० निक्सन** के पश्चात्वर्ती विनिश्चय में और भी अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया गया है। उस विनिश्चय में यह ठहराया गया कि अपनी प्रतिरक्षा में साक्ष्य के क्रम बन्धन में अभियुक्त, वाटरगेट षड्यंत्रकारियों का हित, राष्ट्रपति के विशेषाधिकार की तुलना में अधिक वज़नदार था। यद्यपि **यू० एस० वि० निक्सन** का विनिश्चय कार्यपालिक विभाग की उच्च स्तरीय संसूचनाओं के बारे में संरक्षण से संबंधित था, और वह राष्ट्रीय प्रतिरक्षा से संबंधित नहीं था, तथापि यह प्रतीत होगा कि संयुक्त राष्ट्र में न्यायालय अब विशेषाधिकार का प्रश्न पूर्णतः कार्यपालिका के विवेक पर नहीं छोड़ेंगे। "राज्य की गुप्त बातें" और "शासकीय जानकारी"।

10.33. जहां तक अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया का संबंध है, यू० एस० ड्राफ्ट फेडरल रूल्स में प्रस्तावित सूत्रीकरण साधारण दृष्टिकोण प्रकट करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उन नियमों के नियम 509(सी)[6] में निम्नानुसार प्रस्तावित किया गया :—— संयुक्त राष्ट्र में प्रथा।

1. लिओन फ्रीडमेन (सं०) यू० एस० बनाम **निक्सन:** प्रेसीडेन्ट बिफोर वि० सुप्रीम कोर्ट (1974)।
2. सिम्पोजियम, **यू० एस० बनाम निक्सन** (1974) 22 यू० सी० एल० ए० रिव्यू० 1–140।
3. पाल ए० फ्रियून्ड्स, "आन प्रेसीडेन्शल प्रिविलेज (1974) 88 हार्वर्ड ला रिव्यू० 13।
4. फिलिप कुरलैण्ड, लास एन्जिल्स टाइम्स (22 जून, 1975) प्रिटचेट द्वारा उद्धृत, अमेरिकन कांस्टीट्यूशन (1966), पृ० 250।
5. नियम 509, फेडरल रूल्स आफ एवीडेन्स (1972) (प्रस्तावित)।
6. रूल 509(सी), फेडरल रूल्स आफ एवीडेन्स (प्रस्तावित)।

"(ग) **प्रक्रिया**—राज्य की गुप्त बातों के लिए विशेषाधिकार का दावा केवल सरकार के उस अभिकरण या विभाग के मुख्य अधिकारी द्वारा किया जा सकता है जो उस विषय-वस्तु को प्रशासित करता है जिससे चाही गयी गुप्त जानकारी संबंधित है, किन्तु शासकीय जानकारी के लिए विशेषाधिकार का दावा सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी भी अटर्नी द्वारा किया जा सकता है। अपेक्षित प्रकटीकरण पूर्णतः या अंशतः लिखित कथन के रूप में किया जा सकता है। न्यायाधीश मामले की सुनवाई चेम्बर्स में कर सकता है, किन्तु सभी काउन्सेल दावे और प्रकटन का निरीक्षण करने और उस पर सुने जाने के हकदार हैं सिवाय इसके कि राज्य की गुप्त बातों की दशा में न्यायाधीश, सरकार द्वारा समावेदन किए जाने पर, सरकार को अपेक्षित प्रकटीकरण उपरोक्त प्ररूप में कमरे में करने की अनुज्ञा दे सकता है। यदि न्यायालय कमरे में किए गए प्रकटन के आधार पर विशेषाधिकार को स्वीकार कर लेता है तो सरकार के कथनों का सम्पूर्ण मूल पाठ सीलबंद कर दिया जाएगा और अपील की दशा में न्यायालय के अभिलेखों में परिरक्षित किया जाएगा। शासकीय जानकारी के लिए किए गए विशेषाधिकार की दशा में न्यायालय स्वतः जानकारी की परीक्षा कमरे में करने की अपेक्षा कर सकता है। न्यायाधीश ऐसा कोई भी संरक्षात्मक उपाय कर सकता है जो सरकार के हितों और न्याय को अग्रसर करने के लिए आवश्यक हो।"

सरकार में गोपनीयता और संयुक्त राष्ट्र में विकास।

10.34. यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि "सरकार में गोपनीयता" तक साधारण पहुंच फ्रीडम आफ इन्फारमेशन ऐक्ट से प्रभावित हुई है, यद्यपि वह अधिनियम साक्षिक विशेषाधिकार से सीधे संबंधित नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्रि-परिषद् के कागज-पत्र संबंधी विषय पर संयुक्त राष्ट्र में कोई विशेष विचार विमर्श नहीं किया गया है।

अध्याय 11

सिफारिशें

पूर्ववर्ती अध्यायों में अन्तर्विष्ट विवेचन के परिणामस्वरूप, वर्तमान विधि में कुछ परिवर्तन अपेक्षित होंगे। ये परिवर्तन—

(क) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872,

(ख) प्रक्रिया संबंधी दो संहिताओं, और

(ग) संविधान से,

संबंधित हैं।

(क) जहां तक भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का संबंध है, सिफारिशें धारा 123, 124 और 162 के बारे में हैं।

(एक) धारा 123 को निम्नानुसार पुनरीक्षित किया जाना चाहिए—

123. (1) इस धारा के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, कोई भी व्यक्ति राज्य के किसी भी कार्यकलाप से संबंधित अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों से व्युत्पन्न कोई भी साक्ष्य देने के लिए अनुज्ञात न किया जाएगा, जब तक कि सम्पृक्त विभाग के प्रमुख आफिसर ने ऐसा साक्ष्य देने की अनुज्ञा न दे दी हो।

(2) ऐसा आफिसर ऐसी अनुज्ञा विधारित नहीं करेगा जब तक कि उसका यह समाधान हो जाए कि ऐसे साक्ष्य का दिया जाना लोकहित के लिए हानिकर होगा, और वहां वह ऐसी अनुज्ञा विधारित करता है वह एक शपथपत्र देगा जिसमें उस प्रभाव का कथन अन्तर्विष्ट होगा और उसके लिए उसके कारण उपवर्णित होंगे :

परन्तु जहां न्यायालय की यह राय है कि इस प्रकार दिए गए शपथपत्र में तथ्यों या कारणों को पूर्णतया कथित नहीं किया गया है, वहां न्यायालय ऐसे आफिसर से या, समुचित मामलों में उस विषय से संबंधित मंत्री से उस विषय पर एक अतिरिक्त शपथपत्र देने की अपेक्षा कर सकेगा।

(3) जहां ऐसे अधिकारी ने ऐसा साक्ष्य देने के लिए अनुज्ञा विधारित कर ली हो, वहां न्यायालय, शपथपत्र या अतिरिक्त शपथपत्र पर विचार के पश्चात्, और यदि वह ऐसा ठीक समझता है तो, ऐसे आफिसर की या, समुचित मामलों में मंत्री की मौखिक परीक्षा करने के पश्चात्,—

(क) संबंधित शासकीय अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों के पेश किए जाने के लिए समन निकालेगा, यदि ऐसा समन पहले ही न निकाला गया हो,

(ख) अभिलेखों की परीक्षा चेम्बर में करेगा, और

(ग) इस प्रश्न का क्या ऐसे साक्ष्य का दिया जाना लोकहित के लिए हानिकर होगा या नहीं, अवधारण, उसके लिए अपने कारण अभिलिखित करते हुए, करेगा।

(4) जहां उपधारा (3) के अधीन, न्यायालय यह विनिश्चित करता है ऐसे साक्ष्य का दिया जाना लोकहित के लिए हानिकर नहीं होगा, वहां उपधारा (1) के उपबंध ऐसे साक्ष्य को लागू नहीं होंगे।

(दो) साक्ष्य अधिनियम की धारा 124 निम्नानुसार पुनरीक्षित की जानी चाहिए :—

124. (1) कोई भी लोक आफिसर, उसे शासकीय विश्वास में दी हुई संसूचनाओं को प्रकट करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, जब कि न्यायालय यह समझता है कि उस प्रकटन से लोकहित की हानि होगी।

(2) जहां किसी लोक आफिसर से, जो साक्षी है, ऐसा प्रश्न पूछा जाता है जिससे ऐसी किसी संसूचना का प्रकटन आवश्यक होगा और वह, उस प्रश्न का उत्तर देने से इस आधार पर आक्षेप करता है कि उसके प्रकटन से लोकहित की हानि होगी, वहां न्यायालय, उसका आक्षेप नामंजूर करने के पूर्व, उससे उसके आक्षेप की प्रकृति और उसके लिए कारणों को चेम्बर में अभिनिश्चित करेगा।

(3) इस धारा की कोई भी बात राज्य के किसी कार्यकलाप से संबंधित अप्रकाशित शासकीय अभिलेखों में अन्तर्विष्ट संसूचनाओं पर, जिनके संबंध में धारा 123 के अधीन कार्रवाई की जाएगी, लागू नहीं होती।[1]

(तीन) साक्ष्य अधिनियम, धारा 162 के द्वितीय पैरा में से शब्द "यदि वह राज्य की बातों से संबंधित न हो" निकाल दिए जाएं।

1. नवीन प्रस्तावित धारा 124(3) के संबंध में ऊपर का पैरा 2.5 देखिए।

(ख) जहां तक प्रक्रिया संबंधी दो संहिताओं—सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—का संबंध है, यह आवश्यक होगा कि दोनों ही संहिताओं में उपयुक्त स्थान पर निम्नानुसार उपबंध अन्तःस्थापित किया जाए[1] :—

उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय के विनिश्चय से, जिसके द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन किया गया विशेषाधिकार का दावा नामंजूर कर दिया गया हो, व्यथित किसी भी व्यक्ति को ऐसे विनिश्चय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार होगा, और ऐसी अपील इस बात के होते हुए भी फाइल की जा सकेगी कि वह कार्यवाही, जिसमें न्यायालय द्वारा विनिश्चय सुनाया गया था, उस समय भी लंबित है।

(ग) जहां तक संविधान का संबंध है, अनुच्छेद 74 और 163 में इस रिपोर्ट के सुसंगत अध्याय[2] में प्रस्तावित किए गए अनुसार संशोधन आवश्यक होगा।

के० के० मैथ्यू — — —	अध्यक्ष।
नसीरुल्ला बेग — — —	सदस्य।
जे० पी० चतुर्वेदी — — —	सदस्य।
पी० एम० बक्शी — — —	सदस्य (अंशकालीन)।
एम० बी० राव — — —	सदस्य-सचिव।

दिनांक 7 जनवरी, 1983.

1. देखिए ऊपर का अध्याय 8।
2. ऊपर का पैरा 9:8।

MGIPCBE—S1—3 M of L J & CA/ND/84—27-1-86—250.

PLD-92-LXXXVIII (H)
250-1984 (DSK-IV)

विक्रेता—(1) प्रकाशन व विक्रय-प्रबन्धक, विधि साहित्य प्रकाशन, भारत सरकार, भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवानदास मार्ग नई दिल्ली-110001

(2) प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 054